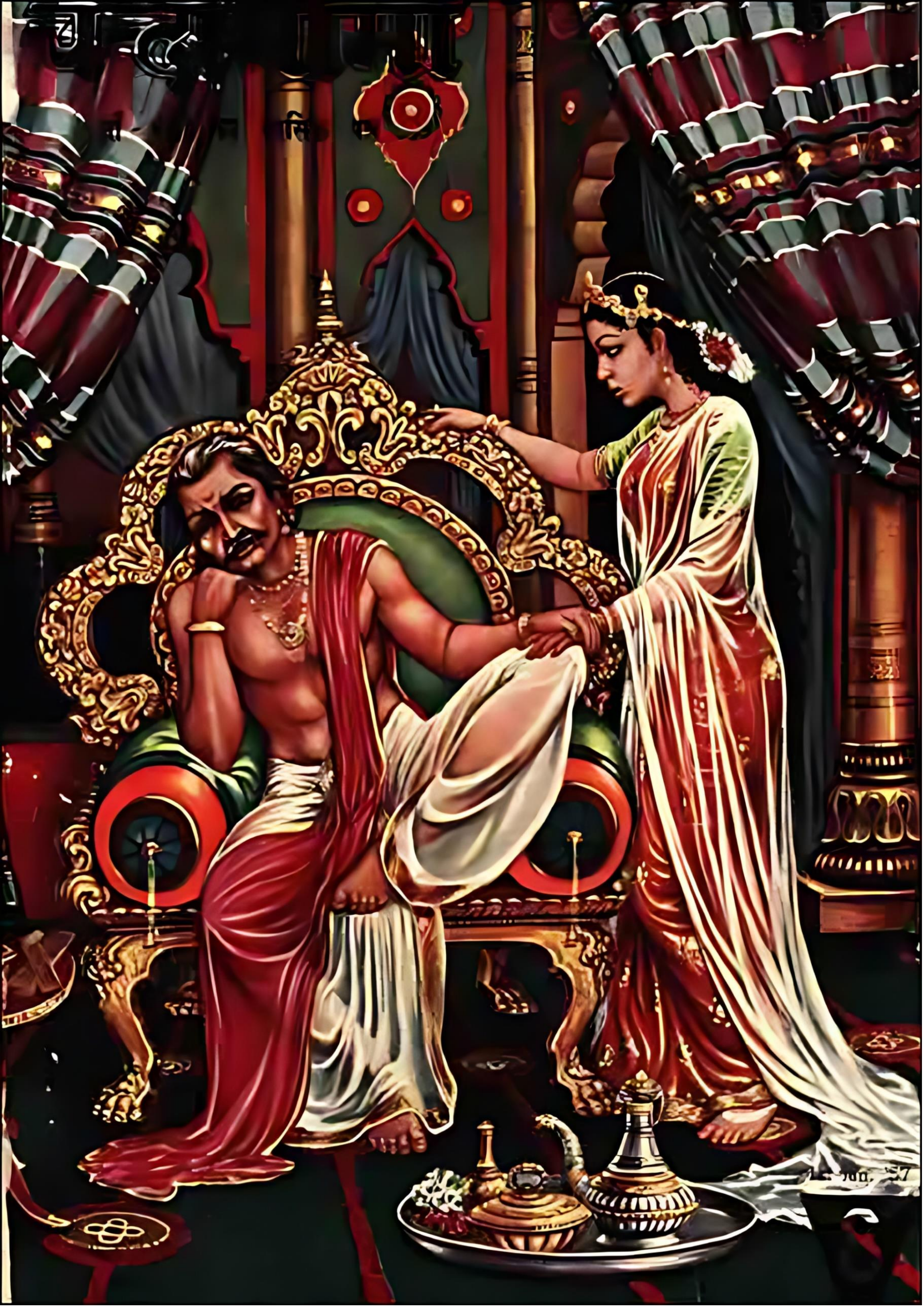




ब्रह्मदत्त तब काशी का राजा था। बोधिसत्व काशी के राजकुमार के रूप में पैदा हुए। तक्षशिला जाकर उन्होंने १६ वर्ष की पूर्ति के पहले ही समस्त शास्त्र-पुराणों का अध्ययन किया। पिता के मरने पर वे काशी के राजा हुए। धर्म के पथ से बिना विचलित हुए उन्होंने राज्य का परिपालन किया।

क्योंकि उनके शासन में कोई त्रुटि न थी, इसलिये प्रजा सुखी थी। ऋतुएँ भी नियमानुसार आतीं। न अन्याय होता, न अपराध ही। इसलिये अदालतों की बुरी हालत हो रही थी। सालों बीत गये। पर कोई भी शिकायत करने न आया। प्रजा में चूँकि किसी प्रकार का कोई आन्दोलन या विरोध न था, इसलिये राजा यह न जान पाता था कि वह क्या ग़लती कर रहा था, और प्रजा उसके बारे में क्या सोच रही थी। कम से कम मुकद्दमेबाज़ी रहती तो राज्जा जान जाता कि प्रजा में क्या हो रहा था? पर मुकद्दमेबाज़ी का कहीं पता ही न था।

इसलिये राजा अपने रथ पर चढ़कर एक दिन नगर में निकल गया। जो कोई सामने आता उससे पूछता-"मेरे राज्य में आपको क्या त्रुटियाँ दिखाई देती हैं?" पर हर कोई वही जवाब देता-"महाराज! हम आपके शासन में बहुत सुखी हैं। हमें कोई भी त्रुटि नहीं दिखाई देती।"

राजा इससे भी सन्तुष्ट न हुआ। इसलिये उसने अपनी राजा की पोशाक उतार फेंकी और मामूली कपड़े पहनकर रथ में आसपास के गाँव में यह जानने के लिये गया कि प्रजा उसके बारे में क्या सोच रही थी।

कई गाँव देखे; पर किसी को भी उसके शासन पर किसी प्रकार की आपत्ति न थी। आखिर रथ राज्य की सीमा तक पहुँच कर सीमा के किनारे नगर को वापिस आ रहा था। इतने में सामने से एक और रथ आया। दोनों रथ एक तरफ न बच सकते थे। रास्ता बहुत तङ्ग था। फिर रास्ता के दोनों तरफ ऊँचाई थी।

दोनों रथ टकराते टकराते बचे, आमने-सामने रुके।

"हमें पहले जाना है, रथ पीछे हटाओ।" काशी राजा के सारथी ने कहा।

"रथ पीछा करने के लिये मुझे कहने का तुम्हें क्या अधिकार है? तुम ही अपना रथ पीछे हटा लो।" दूसरे रथवाले ने कहा।

दोनों सारथी 'तू तू मैं मैं' करने लगे।

"जानते हो इस रथ में कौन हैं? काशी के राजा।" काशी राजा के सारथी ने कहा।

"इस रथ में कोशल देश के राजा हैं।" दूसरे रथवाले ने कहा।

जितना बड़ा काशी का राज्य था, उतना ही बड़ा कोशल का राज्य भी था। उम्र में और विद्या में, कोशल देश का



राजा, मल्लिक कशी के राजा के समान था। वह भी वेश बदलकर, अपने शासन की त्रुटियाँ जानने के लिये गाँव गाँव घूम रहा था।

"तुम्हारे राजा किस बात में बड़े हैं?" काशी के राजा के सारथी ने पूछा। उसका कोशल देश के राजा ने यूँ जवाब दिया :

दलहं दलहस्य खिपति मल्लिको, सुदुना मुदुल

साधुपि साधुना, जेति असाधुम्पि असाधुना

एतादिसो अयं राजा मग्गा, उय्याहि सारथि।

"हमारे मल्लिक राजा, दुष्टों से दुष्टों का व्यवहार करते हैं, और सज्जनों से सज्जनों का। भलेमानसों के साथ वे भले मानस हैं और दुष्टों का मुकाबला दुष्टता से करते हैं।"

यह सुनते ही काशी के राजा के सारथी ने कहा:

अकोपेन जिने कोधं असाधु साधुना जिने

जिने कदरियं दानेन, सञ्चन अलिवादनं

एतादिसो अयं राजा, सग्गा उप्याहि सारथि ।

"हमारे महाराज, क्रोध का शान्ति से सामना करते हैं। दुष्टता को साधुता से वश में लाते हैं। उपहार देकर लालचियों को जीतते हैं। असत्य के बदले सत्य देते हैं।"

काशी के राजा के सारथी के यह कहने पर, कोशल के राजा मल्लिक, झट रथ से नीचे उतरा और काशी के राजा को प्रणाम करके उसने कहा- "पुण्यात्मा! मुझे मेरी त्रुटि मालूम हो गई है। उसे ठीक कर मैं और अच्छी तरह राज्य का परिपालन करूँगा।"

फिर काशी के राजा अपने नगर गया। धर्म के पथ से बिना किञ्चित विचिलित हुए वह राज्य करने लगा।





एक बार एक लोमड़ी भूख से मारी मारी जङ्गल में फिर रही थी। कहीं भी कोई शिकार न मिला। इधर उधर देखता हुआ वह चला जा रहा था कि उसे एक शेर दिखाई दिया।

लोमड़ी के होश-हवाश उड़ गये। उसने काँपते हुए, शेर के सामने साष्टाङ्ग करके कहा-"महाराज! मुझे न मारिये। मैं ज़िन्दगी भर आपकी नौकरी करूँगा, आप जो कहेंगे, वह करूँगा।"

शेर को उस लोमड़ी पर दया आ गई और उसकी बात वह मान गया। शेर उसको लेकर अपने साथ गुफा में ले गया।

तब से शेर गुफा में सोया पड़ा रहता और लोमड़ी बाहर पहरा देती। जब कभी कोई जनवर दिखाई देता तो लोमड़ी अन्दर झाँककर कहती- "महाराज! अच्छा मौका है।"

लोमड़ी का इशारा पाते ही, शेर बाहर आता, दो-चार छलाङ्ग मारकर जानवर को पकड़ लेता और हजम कर लेता। जो कुछ बचता उससे लोमड़ी अपना पेट भरती।

इस तरह लोमड़ी की सहायता से शेर को बाहर जाने की नौबत न आती। वह घर बैठा बैठा ही, शिकार करता और अपना पेट भरता।

लोमड़ी का तो कहना ही क्या! हाथी, जङ्गली सूअर, आदि, जन्तुओं का माँस खाकर, वह थोड़े दिनों में ही खूब मुटिया गई।

होते होते लोमड़ी यों सोचने लगी:"यह शेर मुझ से किस चीज़ में बड़ा है? मैं भी किसी से क्या कम हूँ! मुझे नौकर रखकर, वह शेर आराम से सब जन्तुओं को मार लेता है। मेहनत मेरी है और उसका फल उसे मिलता है। अगर

यह शेर ही मेरा नौकर होता, और जन्तुओं के आने पर मुझे इशारा करता तो मैं भी गुफा में आराम कर मौका पाकर शेर की तरह छलाङ्ग मारता और जन्तुओं को मार देती।"

इसलिये उसने एक दिन शेर से कहा-"महाराज! रोज़ मुझे भी आपकी तरह शिकार खेलने की इच्छा हो रही है। ऐसा मौका मुझे भी दीजिए न?"

लोमड़ी का मतलब शेर जान गया। वह भी उसकी बराबरी कर रही थी।

"अगर तू शिकार करना चाहती है तो आ। हम आपस में अपने काम का अदला-बदला कर लें। थोड़े दिनों तक तू मालिक बन और मैं नौकर। तू गुफा में सो, और मैं बाहर पहरा दूँगा। अगर कोई जन्तु दिखाई दिया तो मैं बता दूँगा। तू बाहर आकर उसे मार देना।"

यह बात सुन लोमड़ी बड़ी खुश हुई। "अब आप देखना मेरे शिकार के हुनर।" कहती हुई लोमड़ी गुफा में सो गई।

शेर गुफा के बाहर पहरा देने लगा। बहुत से जन्तु जो पहले लोमड़ी को देख कर पास आया करते थे, शेर को देखकर दूर भागने लगे। आख़िर एक हाथियों का झुण्ड पेड़ तोड़ता हुआ उस तरफ आया।

शेर ने अन्दर झाँककर कहा- "महाराज! अच्छा मौका है।"

इसी बात की प्रतीक्षा में लोमड़ी बैठी थी। वह गुफा के बाहर निकली और भागी भागी हाथियों पर जा कूदी। तुरन्त हाथी ने सूँड से पकड़कर उसको ज़मीन पर बहुत ज़ोर से दे मारा।

एक ही चोट से लोमड़ी वहीं की वहीं ठण्ड़ी हो गई। मर गई।





[१८]

[टापू पर दिखाई दिये समुद्रकेतु के डाकुओं को बज्रनुष्टि ने मार दिया। देवमाया के रास्ता दिखाने पर, समुद्र में स्थित एक द्वीप में, शिवदत्त और मन्दरदेव आदि गये। उसी द्वीप में समुद्रकेतु का अड्डा था। वहाँ उन्होंने समुद्रकेतु के कैदियों को छुड़ा दिया और सबने मिलकर उस पर हमला बोल दिया।]

वृज्जमुष्टि और समुद्रकेतु की जबर्दस्त मुठभेड़ शुरू हुई। एक दो मिनट में ही वज्रमुष्टि की चोट से समुद्रकेतु की तलवार टुकड़े टुकड़े हो गई। वज्रमुष्टि ने भी अपनी तलवार फेंक दी। उसने ललकार कर कहा-"खाली हाथ लड़कर ही मैं तुझे खतम कर देना चाहता हूँ।" उसने समुद्रकेतु को लिपटी चटाई की तरह भूमि पर फेंक दिया।

उस चोट से समुद्रकेतु चकरा गया। हाय हाय करता वह उठ ही रहा था कि वज्रमुष्टि ने अपने मज़बूत हाथों से उसका गला धर दबोचा। "पापी....तेरे पापों का यही फल है।" कहते कहते उसने उसका गला बुरी तरह घोट दिया। फिर उसको ज़ोर से लात मारकर नीचे फेंक दिया। ससुद्रकेतु वहीं ढेर हो गया।

थोड़ी देर में समुद्रकेतु के अनुयायियों को, जो मारे न गये थे, जेल में डाल दिया गया। तब तक हरिशिख के सैनिकों को



भी न सूझा कि उस युद्ध को कैसे रोका जाय। उन्होंने आगे बढ़कर शिवदत्त से पूछा-"आप कौन हैं?"

शिवदत्त ने सरी कहानी उन्हें सुनाकर कहा-"हम आपके मकर-मण्डल के राजा हरिशिख के मित्र के तौर पर रहना चाहते हैं। हमने सुना है कि आप लोगों में मगर को देवता मान कर मनुष्यों को बलि देने की परम्परा चल पड़ी है। उस मगर को मारने की ताकत रखनेवाला हम में एक है।" उसने बज्रमुष्टि को उन्हें दिखाया। इतने में देवमाया स्वयंप्रभा को लेकर वहाँ पहुँची। उसको सुरक्षित पा सब को बड़ा सन्तोष हुआ।

फिर हरिशिख के सैनिक, शिवदत्त की इच्छा के अनुसार उसको व्याघ्र मण्डल की ओर ले गये। इरिशिख ने उनका स्वागत करके उनसे पूछा-"क्या सचमुच आप में ऐसा कोई व्यक्ति है जो मगर को मार सकता है?"

बज्रमुष्टि ने सामने आकर कहा-"हुजूर! में बचपन से ही जब कि मैं शमन द्वीप में रहा करता था, मगरों का शिकार करता आया हूँ। अगर आप मेहरबानी करके, मगर के रहने की जगह दिखा सकें तो मैं चुटकी भर में उसका काम तमाम कर दूँगा।"

वज्रमुष्टि की बात सुनकर, राजा ने हँसते हुए कहा-"इस मगर को कई मूर्ख देवता मानकर उसकी पूजा कर रहे हैं। पर सब उससे डरते हैं और लोगों का यह भी विश्वास है कि तुम जैसा टेढ़ा-मेढ़ा बौना ही उसे मार सकेगा। अगर तुम्हारे सरदार को कोई आपत्ति न हो, तो मैं भी तुम्हारी होशियारी, बहादुरी देखना चाहता हूँ। बोलो, क्या कहते हो?"

शिवदत्त ने सिर हिलाकर अपनी अनुमति दे दी। उसने सनम्र हरिशिख से कहा-"महाराज! हम आपकी प्रजा की इस मगर से रक्षा करेंगे। उसके बदले हम भी आपसे कुछ मदद माँगना चाहते हैं।"

हरिशिख ने हँसकर कहा- "मदद? जो तुम चाहो वह हम करने को तैयार हैं। मगर

को लेकर इतना अन्ध विश्वास पैदा हो गया है कि मैं बहुत सा रुपया खर्च कर, उसके लिए मनुष्यों की बलि दे रहा हूँ।"

तब शिवदत्त ने हरिशिख को कुण्डलिनी, मरालद्वीप का वृत्तान्त सुनाया और कहा-"सुना है कि आपके पास बहुत बड़ी नौका शक्ति है। हम चाहते हैं कि आप हमारे देशों को क्रूरों के परिपालन से मुक्त करने के लिए आवश्यक सहायता दें।" हरिशिख सहायता देने को मान गया।

उस दिन रात को हरिशिख ने शिवदत्त और उसके अनुयायियों को एक शानदार दावत दी। मकर मण्डल के सभी प्रान्तों में यह ढिँढोरा पिटवाया गया कि चिर प्रतीक्षित टेढ़ा-मेढ़ा बौना आ गया है और वह उस मगर को, जिसे अन्ध-विश्वासी



देवता समझते हैं, कल दुपहर को मारेगा।"

अगले दिन दुपहर को, मकर-मण्डल के निवासी उस जगह इकट्ठे हुए, जहाँ मगर रहा करता था। वहाँ पास के पहाड़ से नीचे देखने पर एक नदी दिखाई देती थी। उस नदी के किनारेवाली गुफा में वह मगर रहा करता था।

वज्रमुष्टि ने दो बड़ी बड़ी तेज तलवारें ली, मूठों को पक्की रस्सी से बाँधकर, उसे हाथ में पकड़कर, वह सब के देखते देखते पहाड़ पर से नदी में कूद गया। वह कुछ दूर पानी के बहाव में बह गया; फिर उस पार पहुंचा और मगर की गुफा में गया।



वज्रमुष्टि के गुफा के पास जाते ही, अन्दर से अङ्गारे जैसी आँखोंवाला, पहाड़ जितना मगर, मुख फाड़कर उस पर कूदा।



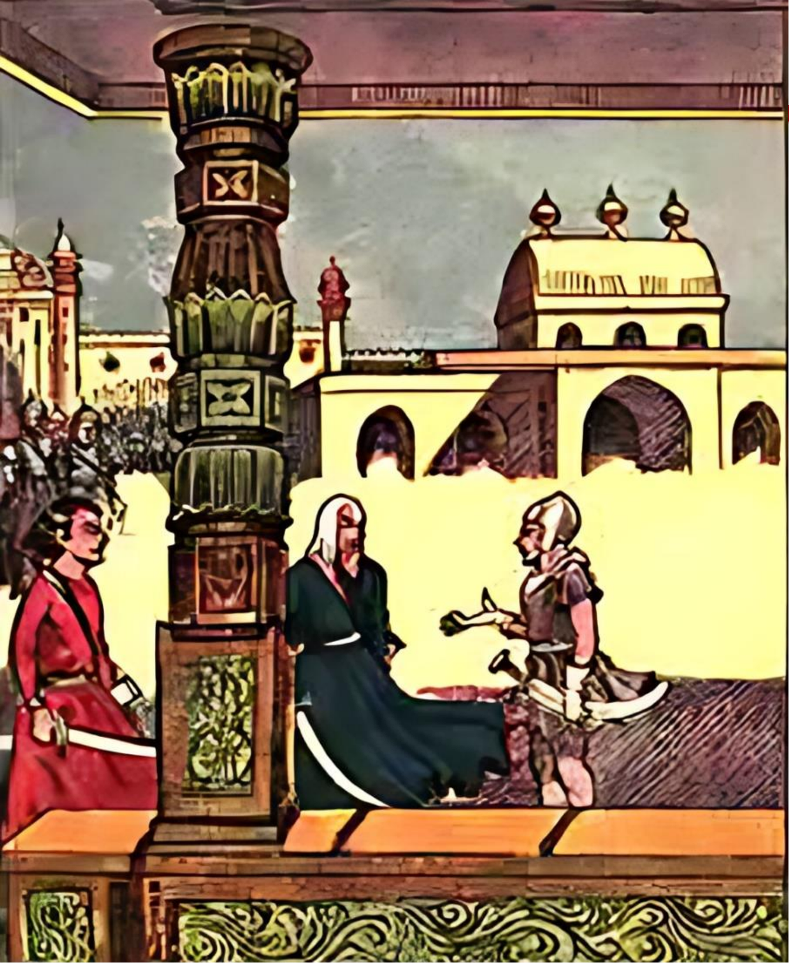
वज्रमुष्टि पीछे न हटा, वहीं खड़ा रहा। उसने हाथ में पकड़ी हुई तलवारों को उसके मुख में भोक दिया। उसकी दोनो तलवारें, मगर के दोनों तरफ के अन्तों में जा घुसी। वह दर्द के मारे छटपटाकर नदी में कूदा। पर तलवारें उसके जबड़ों में फँसी रहीं।

वज्रमुष्टि भी यही मौका देख, एक और बड़ी तलवार को लेकर, मगर के साथ नदी में कूदा। एक दो घण्टे तक नदी के पानी में मगर और वज्रमुष्टि का घोर युद्ध हुआ। वज्रमुष्टि जैसे तैसे उसकी पूँछ की चोट से बचता गया और उसको घायल करता गया। आखिर उसने मगर को खींच कर किनारे पर फेंक दिया।

पहाड़ की चोटी से लोग यह युद्ध देख ही रहे थे। वे और महाराजा हरिशिख मगर को मरा देखकर जय जयकार करने लगे। फिर वज्रमुष्टि को रस्सी की सहायता से पहाड़ की चोटी पर लाया गया।

एक सप्ताह तक मकर मण्डल में खुशियों मनाई गई। वही मगर जो जीते जी देवता कहलाता था, मरने के बाद भूत कहलाया जाने लगा।

हरिशिख ने अपने वचन के अनुसार शिवदत्त को अपनी नौका शक्ति, और बीस हजार सैनिक दिये। शुभ मुहूर्त देख, शिवदत्त और मन्दरदेव, फिर से मराल, और कुण्डलिनी द्वीपों को नरवाहन के अत्याचारों से मुक्त करने के लिए निकल पड़े। उनके साथ देवमाया और स्वयंप्रभा भी गई। तब देवमाया ने बताया कि



होनेवाले दामाद की मदद के लिए पहुँचा।

गुप्तचरों के द्वारा इस हमले के बारे में सुनकर नरवाहन डर के कारण काँपने लगा। वह जान गया कि कुण्डलिनी और मराल द्वीपों की एक साथ रक्षा करना उसकी ताकत के बाहर था। उसने चुपचाप मरालद्वीप को छोड़ दिया। अपनी सेना को लेकर कुण्डलिनी द्वीप में नाकाबन्दी करने लगा।

बिना किसी मुकाबले के, शिवदत्त और मन्दरदेव ने पहले मराल द्वीप पर कब्जा कर लिया। फिर शमन की सेनाओं को भी लेकर सूर्योदय के समय वे कुण्डलिनी द्वीप में उतरे। किनारे पर कहीं भी नरवाहन के सैनिक न दिखाई दिये।

शिवदत्त को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने गुप्तचर भेजे। उन्होंने थोड़ी देर बाद वापिस आकर कहा-"हुजूर! यह जानकर कि हम आक्रमण करने चले हैं, उन सब जङ्गलियों ने, जिन पर पहिले नृशंस अत्याचार किये गये थे, एक साथ विद्रोह कर दिया। सुना है कि उनकी सेनाएँ अब वह कुण्डलिनी नगर को घेरे हुई हैं।"

स्वयंप्रभा शमनद्वीप की राजकुमारी थी। शिवदत्त ने तुरन्त शमन द्वीप को दूत भेजे। उसका ख्याल था कि स्वयंप्रभा का यदि मन्दरदेव के साथ विवाह कर दिया गया तो उससे तीनों द्वीपों का कल्याण होगा। तब तक वह यह भी ताड़ गया था कि वे दोनों आपस में एक दूसरे से प्रेम करने लगे थे।

जब शमनद्वीप के राजा शमन को यह मालूम हुआ कि मरालद्वीप का राजा मन्दरदेव उसकी लड़की से शादी करना चाहता है और वह सकुशल है, तो उसकी खुशी का ठिकाना न रहा। वह भी अपनी नौका शक्ति और सैनिकों को लेकर

यह सुन मन्दरदेव का जोश ठण्डा हो गया। "मैंने प्रतिज्ञा की थी कि कभी न कभी में अपने हाथों से ही इस ज़ालिम नरवाहन को मारूँगा। अब वह प्रतिज्ञा कैसे पूरी होगी?" मन्दरदेव ने कहा।

"मन्दरदेव! तुम अकेले ने ही ऐसी प्रतिज्ञा न की थी; पहले कई जङ्गली नौजवानों ने भी ऐसी प्रतिज्ञा की थी। एक नरवाहन का दो तलवारों का शिकार होना असम्भव है।" शिवदत्त ने कहा।

फिर शिवदत्त ने पचास घुड़सवारों को देकर वज्रमुष्टि को आगे भेजा। अगर तब तक नरवाहन न मारा गया हो तो उसको हिदायत की गई कि वह जङ्गलियों से कहे कि वे उसे न मारें।

वज्रमुष्टि जब घुड़सवारों के साथ कुण्डलिनी नगर में पहुँचा तो जङ्गलियों ने हमला कर दिया था। उनके भालो और बाणों से नरवाहन के सैकड़ों सैनिक मारे गये। वज्रमुष्टि शिवदत्त द्वारा भेजी हुई खबर को जङ्गली नेताओं को सुनाता सुनाता आगे बढ़ा। किले के पास पहुँचने पर उसने देखा कि नरवाहन जङ्गलियों



के बीच, एक बुर्ज पर खड़ा है और उसके हाथ-पैर बाँध दिये गये हैं।

"उसे न मारो, न मारो।" चिल्लाते चिल्लाते वज्रमुष्टि ने अपना घोड़ा बुर्ज की ओर दौड़ाया ही था कि जङ्गलियों ने नरवाहन को बुर्ज पर से खाई में धकेल दिया। उस जगह इकट्ठे हुये जङ्गली खुशी से चिल्लाने लगे।

दो तीन घण्टे बाद, शिवदत्त, मन्दरदेव और शमन वहाँ पहुँचे। उनका जङ्गलियों के सरदारों ने खूब स्वागत किया। तुरन्त मन्दरदेव मराल द्वीप के साथ कुण्डलिनी

द्वीप का भी राजा घोषित कर दिया गया। जङ्गलियों को वे सब जमीनें दे दी गईं जिन पर नरवाहन ने अपना कब्जा कर लिया था। एक सप्ताह बड़े धूमधाम से मन्दरदेव और स्वयंप्रभा का विवाह हुआ। शिवदत्त ने हरिशिख के सैनिकों को खूब इनाम देकर उनको मकर-मण्डल वापिस भेज दिया। बाद में शिवदत्त की इच्छा पर मन्दरदेव ने दरबार बुलाया। उसमें कुण्डलिनी और मराल द्वीप के बड़े बुजुर्ग हाजिर हुए। उस दरबार में शिवदत्त ने घोषणा की कि वह सन्यास ले लेगा, और शेष जीवन राम नाम जाते जङ्गलों में बिताएगा।

इस घोषणा के कारण मन्दरदेव और अन्य दरबारी बहुत चिन्तित हुए। उन सब ने शिवदत से प्रार्थना की कि या तो मन्त्री के तौर पर, नहीं तो राजगुरु के रूप में यह राज्य का सञ्चालन करे। पर शिवदत्त न माना। उसने दरबारी और मन्दरदेव को सम्बोधित कर यों कहा:

"मैं समझता हूँ कि कुण्डलिनी और मराल द्वीप के वासी अब तक यह जान गये होंगे कि शासक और शासित का किस धर्म के पालन करने से कल्याण होगा। सबने चित्रसेन और समरसेन के शासन के साथ नरवाहन का शासन भी देखा है। इसलिये आप जानते हैं कि कौन-सा अच्छा शासन है और कौन-सा बुरा। आप तदनुसार काम करेंगे, यही मेरा विश्वास है।"

यह सुन दरबारी तालियाँ पीटने लगे। सब को नमस्कार कर, शिवदत्त दरबार से निकला। राजा प्रजा के साथ नगर से बाहर, चार-पाँच कोस की दूरी पर स्थित वन तक उसके साथ गया। शिवदत्त वहाँ फिर सबको बार बार नमस्कार कर वन में चला गया।

(समाप्त)





बिप्रगिरि ब्राह्मणों की बस्ती थी। उसमें एक पण्डित रहा करता था। उसकी सावित्री नाम की एक लड़की थी। उसके दो शिष्य थे, जिनका नाम शरभ और करभ था। वे पढ़ने-लिखने में चुस्त न थे। पर उनकी मुरादें बहुत बढ़ी चढ़ी थीं।

एक दिन उस गाँव में कामग्रीव नाम का ब्राह्मण आया। उसकी उम्र साठ वर्ष की थी। वह पण्डित के घर के सामने से गुज़रता, बाहर उसकी लड़की को देखकर रुका। उस लड़की ने तुरन्त घर के अन्दर जाकर अपने पिता से कहा-"पिताजी, कोई आये हैं।"

पण्डित ने आकर बाहर बूढ़े को देखा। यह जानकर कि वे किसी और गाँव के हैं, उसने कहा-"आइये, हमारे घर में भोजन कीजिये।" कामग्रीव ने भोजन के बाद पण्डित से कहा -"मैं आपसे एक बात एकान्त में कहना चाहता हूँ।"

तुरन्त, पण्डित ने अपने शिष्यों को बाहर जाने के लिए कहा। फिर उसने पण्डित से कहना शुरू किया-"अपनी लड़की देकर मेरा विवाह कीजिये। मैंने एक योगी के पास परकाय प्रवेश, इन्द्रजाल आदि विद्यायें सीखी हैं। परन्तु उसकी महिमा देखने से पहले, मैं काशी में, गङ्गा के किनारे गिर पड़ा और मेरा एक दाँत टूट गया। इसलिए मैं अब उस विद्या का अभ्यास नहीं कर सकता। इसलिए शादी के बाद जब बच्चा पैदा होगा तो उसको ये विद्यायें सिखाकर मैं मर जाना चाहता हूँ।"

कामग्रीव की बातों पर पण्डित को विश्वास नहीं हुआ। वह नहीं चाहता था कि अपनी लड़की को इतने बूढ़े को दे।

श्री नरेन्द्र कुमार



इसलिए उसने कामग्रीव से कहा- "माफ कीजिये, मेरी एक ही एक लड़की है और फिलहाल मैं उसकी शादी भी नहीं करना चाहता।"

कामग्रीव निराश हो गया और अपने रास्ते पर चला गया।

पर शरभ और करम ने आड़ में रहकर कामग्रीव और पण्डित की बातचीत सुनी। तब दोनों ने आपस में सोचा-"हम पढ़ तो पा ही नहीं रहे हैं। अगर हमने उस बूढ़े की सेवा-शुश्रूषा की तो मरने से पहले हमें अपनी विधायें सिखा देगा।"

इसलिए गुरु से कहे बिना ही वे निकल पड़े। वे बूढ़े को ढूँढ़ते ढूँढ़ते शाम को कामग्रीव के पास पहुँचे। उन्हें पहचानकर उसने पूछा-"तुम यहाँ क्यों आये हो?"

"स्वामी! जब आपने हमारे गुरु की लड़की से विवाह करना चाहा तो उन्होंने मना कर दिया। आपके जाने बाद, पति-पत्नी में बड़ी बकझक हुई। उनकी पत्नी ने कहा-'अच्छा होता अगर लड़की की शादी कर देते।' हमने भी यही कहा। गुरु को हम पर गुस्सा आ गया और उन्होने हमें घर से बाहर निकाल दिया। हमने प्रतिज्ञा कर ली कि ज़रूर आपका विवाह करके ही रहेंगे। हमें अपनी प्रतिज्ञा पूरा करने का अवसर दीजिये।" शरभ और करभ ने कहा।

यह सुन बूढ़े कामग्रीव को ढाढ़स मिला। उसने उन दोनों को साथ आने दिया। वह गाँव गाँव भटकता रहा। उसने कई जगह विवाह के लिए प्रस्ताव रखे। करम और शरभ उनके सामने तो उसके प्रस्ताव का समर्थन करते और लड़की के पिता के पास जाकर कहते-" यह बूढ़ा है, आज नहीं तो कल चला जायेगा। आप अपनी लड़की उसे न दीजिये।"

कुछ भी हो, कामग्रीव का विवाह न हुआ। कुछ दिनों बाद उसने चारपाई पकड़ी। जब उसे पता लग गया कि वह मरनेवाला है शरभ को परकाय प्रवेश विद्या और करभ को इन्द्रजाल विद्या देकर मर गया।

इस तरह शरभ और करभ की इच्छायें पूरी हो गई और वे अपनी विद्या का उपयोग करने के लिए देश में घूमने निकल पड़े। कुछ दिन यात्रा करके वे एक नगर में पहुँचे। वहाँ करभ ने राजा को इन्द्रजाल दिखाकर रुपया कमाने की सोची। यह देख शरभ को बड़ी ईर्ष्या हुई। पर नगर में वे जब धूमे फिरे तो उन्हें मालूम हुआ कि राजा बीमार थे और हर प्रकार के मनोरञ्जन की मनाई थी। तब करभ को ईर्ष्या हुई कि कहीं ऐसा न हो कि राजा मर मरा जाय और शरभ परकाय प्रवेश विद्या का उपयोग करके स्वयं राजा बन जाय।

थोड़े दिनों बाद राजा की बीमारी ठीक हो गई। राजा के सामने इन्द्रजाल विद्या का प्रदर्शन कर करभ ने बड़े इनाम पाये। यह शरभ न देख सका। वह उससे झगड़ कर अपने अलग रास्ते पर चला गया।

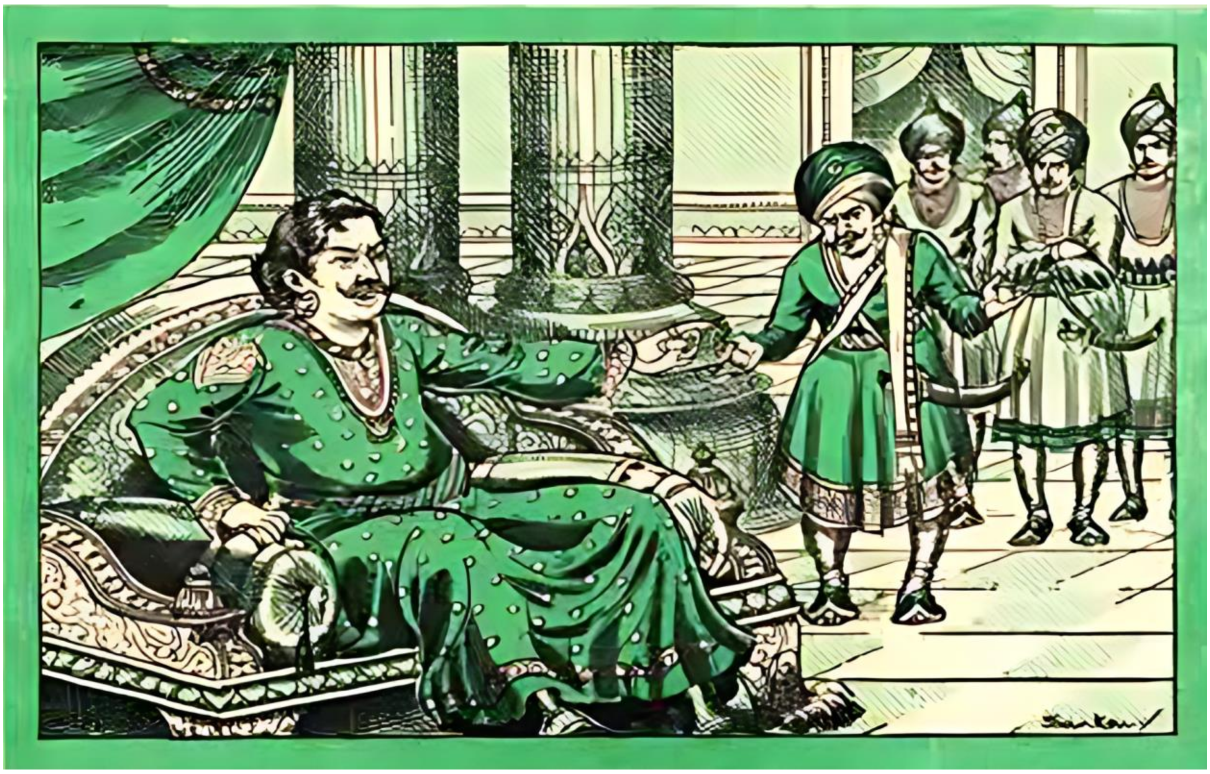


वह चलता चलता एक और नगर में पहुँचा। ठीक उसी समय, उस नगर का राजा रत्नाकर मर गया। शरभ ने यह सुनते ही एक चिता लगाई और उस में अपना शरीर डाल दिया और जाकर रत्नाकर के शरीर में प्रवेश किया। मृत राजा को पुनर्जीवित पा सब बड़े खुश हुए। परन्तु राजा में कई परिवर्तन आ गये थे। उसमें पुराने राजा का ठाट-बाट, शान-शौकत कुछ भी न था। वह खोया खोया सा रहता। ऐसा लगता कि मानों वह अपनी ही बातें ठीक तरह न जानता

हो। यह परिवर्तन देखकर मन्त्री चकित थे। रानी और उसकी लड़की कीर्तिसेना ने उसके पास जाने से इनकार कर दिया। मन्त्रियों ने जाकर जब रानी से कहा कि आपको महाराजा बुला रहे हैं तो रानी ने बताया कि महाराजा तो उसी दिन चले गये थे। मैं विधवा हूँ। मुझे कोई नहीं बुलवा सकता।

शरभ के रत्नाकर के शरीर में प्रवेश करने के थोड़े समय बाद करभ भी उस नगर में आया। बहुत खोजने के बाद उसे शन्तनु का आतिथ्य मिला; वह राजा के यहाँ पुरोहित था। बातों बातों में, शन्तनु ने करभ को राजा की बात भी सुनाई और कहा-"एक सुन्दर लड़की से शादी करवाने के लिए वह मुझे दिक कर रहा है।"

सब कुछ सुनने के बाद करभ ने अनुमान किया कि शरभ ने राजा के शरीर में प्रवेश किया है। "अरे भाई! अगर तुमने मेरी बात मानी तो मैं तुम्हारे राजा का भूत भगा दूँगा। मैं थोड़े दिन तुम्हारे घर रहकर ही लुका छुपा जादू करूँगा। तुम आज शाम को ही अपने राजा को बगीचे



में लाओ। उनसे कहना कि वहाँ एक अप्सरा जैसी स्त्री है। उनको शहर से बाहर, उत्तर की ओर वाले श्मशान में ले जाओ। फिर बाद में जो कुछ करना होगा, में कर दूँगा।" करभ ने शन्तनु से कहा।

शन्तनु ने राजा के पास जाकर कहा- "महाराज! शहर के बाहर, उत्तर वाले हमारे बाग़ में कोई रम्भा जैसी कन्या आकर ठहरी हुई है। मेरी प्रार्थना है कि आप उसको एक बार देखें।"

राजा मान गया। जल्दी जल्दी उस तरफ चला। दोनों मिलकर श्मशान में गये। वहाँ उनको करभ के इन्द्रजाल के प्रभाव से बना हुआ सुन्दर उद्यान दिखाई दिया। उद्यान में कुछ दूर जाने के बाद, पेड़ों के झुरमुट में एक सुन्दर स्त्री वीणा बजाती हुई दिखाई दी। राजा उसकी तरफ लपका। जब उसने उठकर देखा तो न वहाँ उद्यान था, न स्त्री ही।

"यह क्या? यह तो कोई जादू-सा लगता है।"

"महाराज! आप स्त्री का सौन्दर्य देखकर मूर्छित हो गये हैं। मैं जब आपको घर ला रहा था तो रास्ते में आप बेहोश





हो गये। अब देर हो गई है। कल आकर फुरसत से बात कर सकते हैं।" शन्तनु ने राजा से कहा। वह उसे घर ले गया।

राजा ने मन्त्री से कहा-"शहर के बाहर उत्तर में जो बाग़ है, उसके चौकीदार को बुलवाइये। मैं स्वयं उससे कहना चाहता हूँ कि उस बाग़ में जो अप्सरा रह रही है, उसे किसी प्रकार की असुविधा न हो।"

मन्त्री हैरान हो गये। "महाराज! हमारे नगर के उत्तर में कोई उद्यान ही नहीं है। चौकीदार को कैसे बुलाया जाये?"

राजा ने उन्हें डाँटा डपटा-"मैंने स्वयं उसे अपने आँखों देखा है, और आप कहते हैं कि वहाँ कोई नहीं है। आप कुछ नहीं कर सकते। मेरा शन्तनु के सिवाय कोई मित्र नहीं है।"

इस बीच में, शन्तनु ने घर जाकर करभ को, जो कुछ गुज़रा था, सुनाया। करभ जान गया कि राजा के शरीर में शरभ ही था। वह उसी दिन रात को शन्तनु की सहायता से रानी से मिलने गया। वहाँ कीर्तिसेना भी थी। करभ ने रानी से कहा-"महारानी! महाराजा के शरीर में शरभ नाम के व्यक्ति ने प्रवेश कर रखा है। में उसको भगा सकता हूँ।" रानी इस बात के लिए मान गई।

करभ को, राजमहल में आने जाने की अनुमति भी मिल गई। वह ज्यों ज्यों की कीर्तिसेना को देखता जाता, त्यो त्यों, उसकी उससे शादी करने की इच्छा प्रबल होती जाती। एक दिन उसने शन्तनु से कहा-"अरे भाई! अगर तुमने मेरी शादी कीर्तिसेना से करवा दी तो मै तुम्हें इन्द्रजाल विद्या सिखा दूँगा।"

क्योंकि शन्तनु ने स्वयं इन्द्रजाल विद्या का चमत्कार देखा था, इसलिए वह उस

विद्या को सीखने के लिए लालायित हो उठा। राजा उसकी हर बात पर कान देता था। इसलिये उसने राजा के पास जाकर कहा-"महाराज! यदि आप यह चाहते हैं कि जो लड़की हमने देखी थी, वह आपके वश में आ जाये, तो हमें एक ब्राह्मण नौजवान की सहायता लेनी होगी। पर जब तक आप अपनी लड़की की शादी उससे न करेंगे, वह आपकी मदद न करेगा। क्या किया जाय?"

"अरे इसमें सोचने की क्या बात है? विवाह के लिए तैयारियाँ शुरू करो...... मन्त्रियों से भी कहो।" राजा ने कहा।

रानी को भी मालूम हुआ कि उसके लड़की के विवाह की तैयारियाँ हो रही हैं और मुहूर्त भी निश्चित कर दिया गया है। यह भी पता चला कि उन तैयारियों के लिए शन्तनु ही जिम्मेवार था। पर यह न मालूम हुआ कि वर कौन था। इस बात को जानने के लिए रानी ने शन्तनु को बुलवाया और कहा-"सुना है लड़की की शादी करवा रहे हो? कम से कम मुझ से तो कहा होता। मैं तो सचमुच उसकी शादी तुम से ही करना चाहती थी।"



शन्तनु जान गया कि वह ग़लती कर बैठा था। उसने पछताते हुए कहा-"क्या कहूँ? राजा को जो भूत पकड़े हुए है, उसको इन्द्रजाल से छुड़ाने की करभ कोशिश कर रहा है। परन्तु वह कीर्तिसेना से विवाह करना चाहता है। इस शर्त पर कि वह इन्द्रजाल विद्या मुझे दे देगा, मैं इस विवाह का प्रबन्ध करवा रहा हूँ। अगर वह विद्या मेरे हाथ आ गई तो मैं ही खुद राजा का भूत भगा दूँगा। राज्य के कल्याण के लिये ही में यह काम कर रहा हूँ, मेरा विश्वास कीजिये।"

"राजा की हालत देखकर मुहूर्त जो टलवा देते? मुहूर्त से पहले करभ को अपना काम करने को कहो।" रानी ने कहा।

कीर्तिसेना को सारी बात उसकी माँ ने बता दी। उसने अपने सहेली को, सब सिखा-पढ़ाकर, करभ के पास भेजा। उसने करम से कहा-"यह सुन कि तुम शादी करने पर तुले हुए हो, हमारी राजकुमारी को बड़ी खुशी हुई। शायद तुम सोच रहे थे कि वे तुम से शादी न करेंगी, परन्तु जब से उन्होंने तुम्हें देखा है, तभी से वे तुम से शादी करने के लिए उतावली ही रही हैं। तुम अपना इन्द्रजाल उस शन्तनु को क्यों दे रहे हो? अगर वह शादी न कराए तो क्या तुम्हारी शादी नहीं होगी?"

करभ को पछतावा हुआ। "अरे अरे! पहले ही वचन दे चुका हूँ।"

"अब भी क्या हो गया है? आज नहीं तो कल राजा के भूत को भगा दो और तुरन्त उस विद्या को होनेवाली पत्नी को ही सौंप दो। तब शन्तनु तुम्हारा कुछ न बिगाड़ सकेगा।" उसने कहा।



थोड़ी देर बाद शन्तनु ने आकर करभ से कहा-"अब देरी करने से हम दोनों की फजीहत होगी। तुम तुरन्त राजा के भूत शरभ को छुड़ा दो। तब यह मेरे जिम्मे रहा कि मैं तुम्हारी शादी करवा दूँगा।"

करभ ने उस दिन फिर इन्द्रजाल किया। उसी दिन एक ग्वाला, साँप के काटने से मर गया था। और करम ने जादू करके उसकी लाश को कहीं छुपा दिया। उस दिन शाम को फिर उसने उद्यान तैयार किया, उसमें उसने एक जादू की स्त्री बनाकर रखी और उसकी बगल में खाले की लाश को रख दिया। शन्तनु राजा को उस उद्यान में ले गया। जब वह पहुँचा ता वह स्त्री, ग्वाले की लाश पर पड़ी रो रही थी।

"यह क्या है? यह कौन है? क्यों रो रही है?" राजा ने उससे पूछा।

"क्या करूँ? यह मेरा नौकर है। यह मेरे पिता के खजाने को कहीं रखकर उसकी हिफाज़त कर रहा था। वह यकायक साँप के काटने से मर गया। में यह जानना चाहती हूँ कि वह खज़ाना कहाँ रखा हुआ है। वह दो मिनिट के लिए जिन्दा हो जाये तो काफी है।"



"इस बात के लिए तेरा इतना रोना धोना अच्छा नहीं। मैं इसे जिला देता हूँ।" कहते हुए राजा का शरीर धारण किया हुआ शरभ उस शरीर को छोड़कर ग्वाले के शरीर में प्रवेश कर गया। उसी समय करभ ने जो वहाँ खड़ा था, राजा के शरीर के दो टुकड़े कर दिए। फौरन वह उद्यान भी गायब हो गया, स्त्री भी ग़ायब हो गई। रह गये- शन्तनु, करम और ग्वाले के रूप में शरभ।

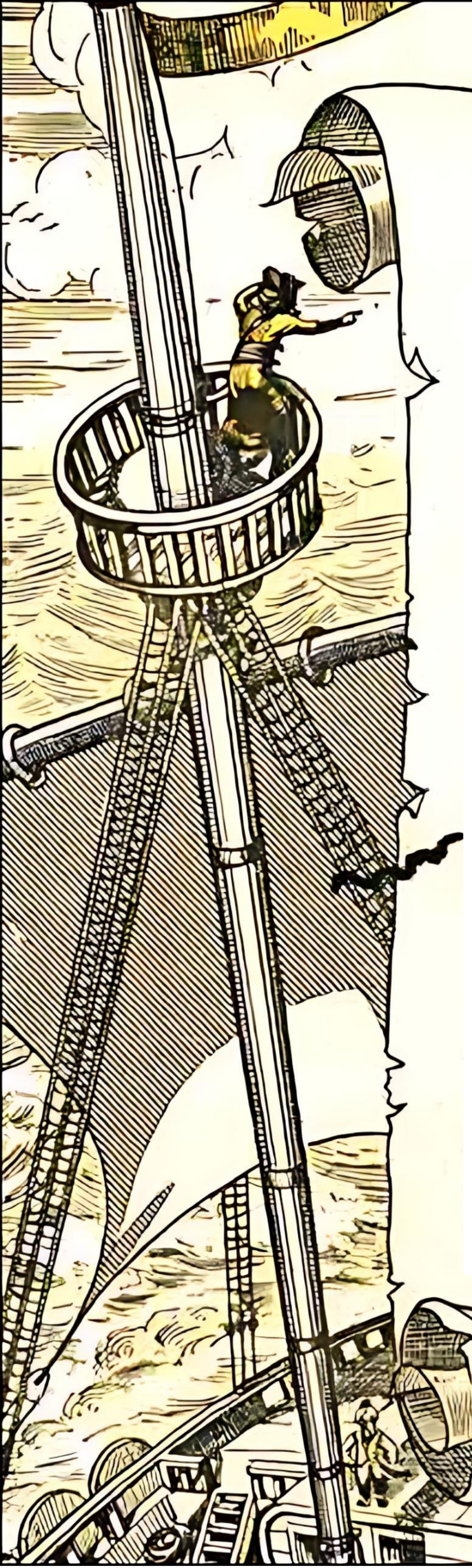
शन्तनु और करभ ने मिलकर, ग्वाले के हाथ-पैर बाँध दिये। शन्तनु ने कहा-"अब मुझे अपना इन्द्रजाल विद्या दो।" करभ ने कहा- "राजकुमारी से विवाह के बाद दे दूँगा।"

दोनों ग्वाले को लेकर रानी के पास गये। "राजा के शरीर में जिसने प्रवेश किया था, वह यही दुष्ट है। अब यह ग्वाले के शरीर में घुस गया है। आप इसे जो दण्ड देना चाहें, दीजिये।" उन्होंने कहा। मन्त्रियों ने ग्वाले को क़ैद कर दिया।

तब करभ ने कीर्तिसेना के पास जाकर कहा-"यह ले मेरी इन्द्रजाल विद्या। अब हमारा विवाह ही बाकी रह गया है।" उसने उसके पास से इन्द्रजाल विद्या को लेकर नौकरों से कहा-"इस लालची कामुक को क़ैद में डाल दो।"

यह जान कि करभ को क़ैद में डाल दिया गया है, शन्तनु सोचने लगा कि अब जरूर उसकी और राजकुमारी की शादी होगी। वह खुशी खुशी राजमहल में गया। उसे देखते ही राज सैनिकों ने उसे भी कैद में डाल दिया। इस तरह लालच के झञ्झट में पड़कर, शरभ, करभ और शन्तनु को आखिर जेल भुगतनी पड़ी।





नाविक सिन्दबाद

हवा के जोर से हम दो दिन और दो रात बाद एक द्वीप में पहुँचे। हमारी हालत बुरी हो चुकी थी। अब और तब की बात थी। हमने थोड़े फल खाये और पानी पिया। इतने में अन्धेरा हो गया। हम रात भर पेड़ पर ही सोते रहे।

जब हमने सबेरे आँखें खोली तो हमारी हालत के बारे में कुछ न पूछो। एक भयङ्कर अजगर जो उस पेड़ के समान था, जिस पर हम चढ़े हुए थे, गुफा की तरह मुख खोलकर हमारी ओर चला आ रहा था। वह हमें देखते ही ऊपर उठा और हमारे में से एक को कौर बनाकर चबा गया।

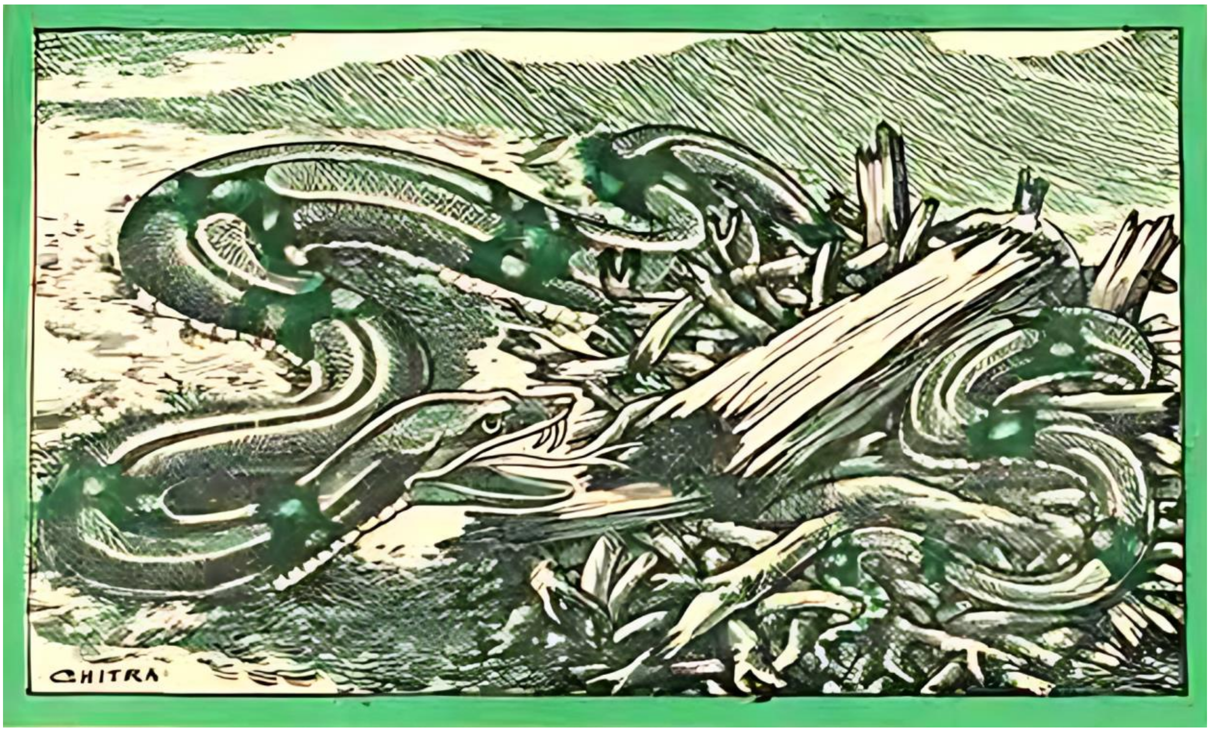
उसके जाने के बाद, मैंने और बचे साथियों ने कुछ फल खाकर पानी पिया। फिर द्वीप में घूमकर एक और बड़े पेड़ को हमने ढूँढा और उसी पर रात बिता दी। परन्तु सवेरे होने से पहले वह अजगर वहाँ भी आ धमका। उसने अजीब ढङ्ग से पेड़ को लपेटा और मेरे साथी को भी ख़तम कर दिया।

तीसरी समुद्र यात्रा

मैं बहुत घबरा गया। क्या बताऊँ अब मैं अकेला ही रह गया था। क्या हम उस राक्षस से इसीलिए बचकर आये थे कि इस अजगर के मुख में पड़ें। इससे अच्छा तो आत्महत्या कर लेना था। मैं इसी सोच-विचार में समुद्र की ओर भागा।

पर जीने की इच्छा बड़ी अजीब है। वह छोड़े भी नहीं छूटती। अजगर से बचने के लिए मुझे एक उपाय सूझा। मैंने समुद्र के किनारे पड़े हुए लक्कड़ जमा किये। चार बड़े बड़े तख़्तों को चारों ओर रखकर उसके बीच में मैं सो गया। एक तख़्ते से अपने को ढाँक लिया। अजगर अपने समय पर आया। उसने उन तख़्तों के बीच में से निकालना चाहा। पर वह कोशिश कर करके हार गया। आखिर ऊबकर वह मुझे छोड़कर चला गया।

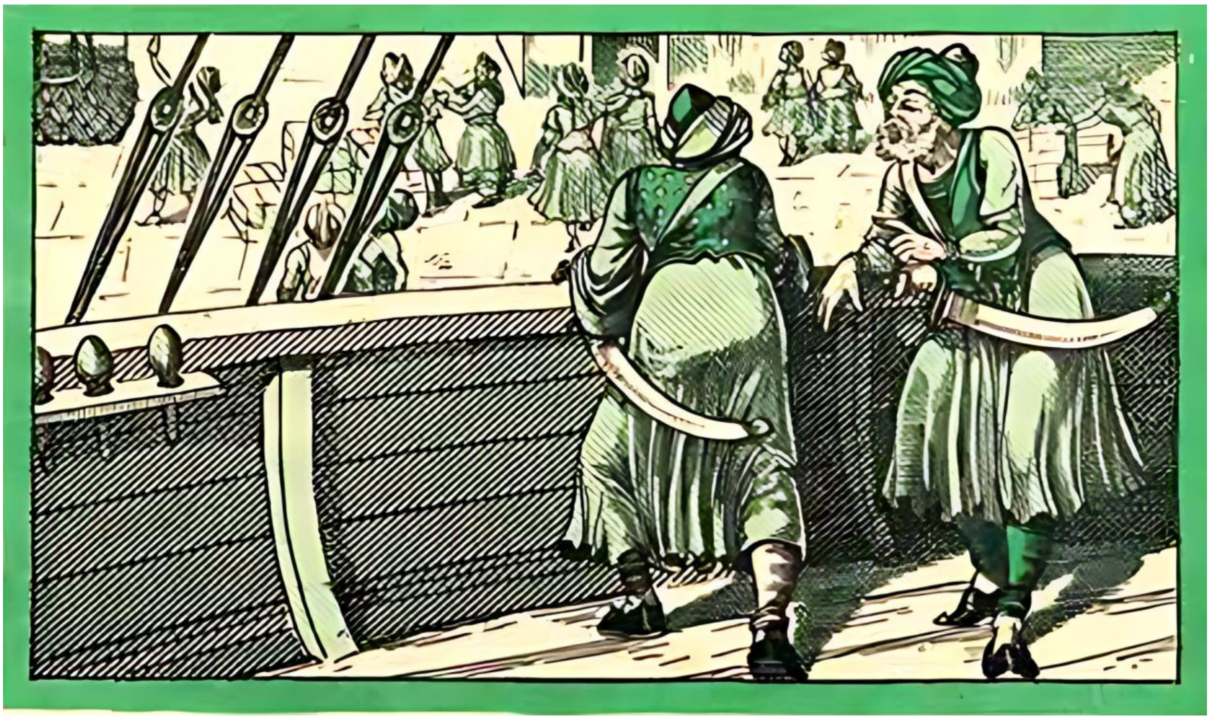
यह ठीक तरह मालूम करके कि वह चला गया है, मैं तख़्ते हटाकर बाहर निकला और समुद्र के किनारे चला गया। समुद्र में दूरी पर एक जहाज दिखाई दिया। मैं पागल की तरह, हाथ उठा उठाकर चिल्लाने लगा। फिर एक टहनी पर अपनी पगड़ी बाँधकर उसे उठाकर फहराने



लगा। सौभाग्य से जहाज़वालों ने उसे देख लिया। जहाज़ द्वीप के पास आया। जल्दी ही किनारे पर उसने लङ्गर डाल दिया। जहाज़ वालों ने मुझे उस पर चढ़ा लिया। जहाज़ में चढ़ते ही उन्होंने मुझे अच्छे कपड़े दिये और खूब खिलाया पिलाया। बहुत थका हुआ था शायद, बड़ी गहरी नींद आई। मैं तब तक तो मौत को ही सामने देखता आ रहा था। अब जीने की इच्छा और प्रबल हो उठी। मैंने ख़ुदा को दुआ दी। धीमे धीमे में ठीक हो गया और गुज़री हुई मुसीबतों को भूलने लगा।

हमारा सफर मजे में हो रहा था। आखिर हम सलाहिता द्वीप में पहुँचे। बन्दरगाह में जहाज़ का लङ्गर डालना था, व्यापारी खरीद-फरोख्त करने के लिये शहर में चले गये। तब जहाज़ के कप्तान ने मेरे पास आकर कहा-"तुम बहुत ही गरीब, बेघर-बार मालूम होते हो। लगता है, बहुत मुसीबतें झेली हैं। मैं तुम्हारी मदद करना चाहता हूँ। मैं तुम्हें तुम्हारे ठिकाने पर पहुँचा दूँगा। वहाँ मज़े में रहना।"

"चाहे आप कुछ भी मदद करें में आपकी मदद कभी न भूलूँगा।" मैंने कहा।





"तो सुनो। कुछ साल पहले हमारे साथ एक व्यापारी आया था। वह सफर में, एक द्वीप में रह गया। फिर उसका कुछ पता न लगा। जाने वह ज़िन्दा है, या मर गया है। उसका सारा सामान यहाँ पड़ा है। तुम जाकर उसे बेच आओ। उसमें से तुम अपना हिस्सा ले लेना और बाकी मुझे दे देना। मैं उसे ले जाकर उसके रिश्तेदारों को दे दूँगा।"कप्तान ने कहा।

"अगर आपने यह किया तो आपकी मेहरवानी से में भी जी लूँगा। इस हालत में इतनी ईमानदारी से पैसा कमाने के सिवाय और कर ही क्या सकता हूँ?" मैंने कहा।

कप्तान के हुकुम पर खलासियों ने सामान लाकर रखा। कप्तान ने मुनीम को बुलाकर कहा-"इन सब को बही में लिखो।"

"अच्छा हुजूर, किनके नाम लिखूँ?" मुनीम ने कहा।

"यह माल नाविक सिन्दबाद का है। परन्तु उसको इसके नाम लिख दो। उसका नाम उससे ही पूछकर मालूम कर बही में लिख लो।" कप्तान ने मुनीम से कहा।



"मैं ही नाविक सिदबाद हूँ।" मैं आश्चर्य से चिल्लाया। जब मैंने गौर से कप्तान को देखा तो वह वही था, जो मुझे दूसरी सफ़र में, द्वीप में छोड़कर चला गया था।

मैंने हक्का-बक्का होकर पूछा-"क्या मुझे आप पहचानते नहीं हैं? मैं नाविक सिन्दबाद ही हूँ। बाग़दाद का व्यापारी हूँ। मेरी कहानी सुनिये। मैं ही बहुत साल पहले उस द्वीप में इधर उधर घूमता रहा और वापिस आकर जहाज़ न पकड़ सका। एक सुन्दर झरने के पास सो

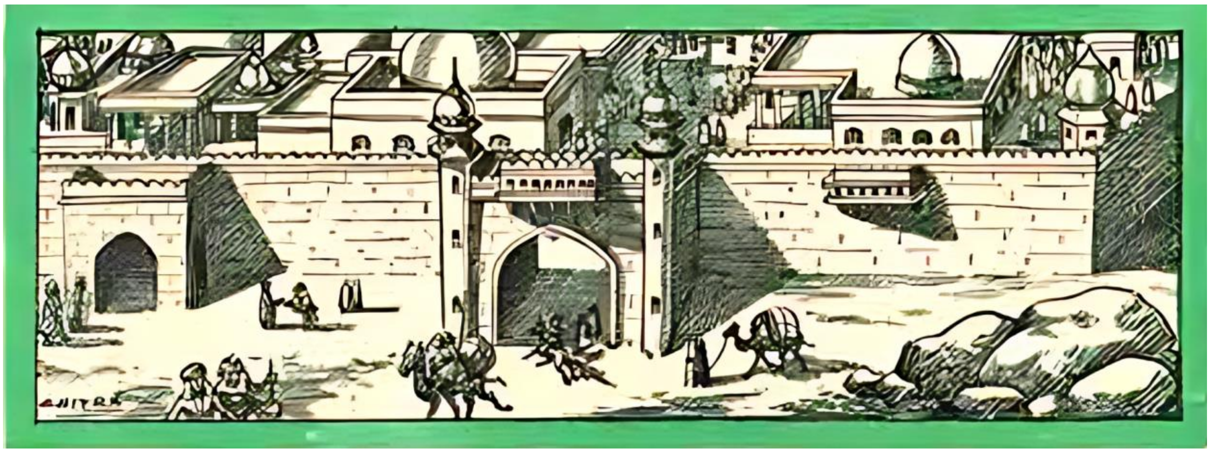
गया। जब में उठा तो जहाज तब तक बहुत दूर जा चुका था। फिर मोती के पर्वतों में गये हुए व्यापारियों ने मुझे देखा। वे मुझे पहचान सकते हैं।" मैंने कहा।

मैं यह बता रहा था कि एक व्यापारी जहाज पर कुछ और माल लेने आया। उसने अपना सारा माल शायद बेच दिया था। उसने मुझे अचम्भे में देखा। फिर हाथ उठाकर चिल्लाया "या खुदा! मेरी बात पर किसी ने यकीन ही न किया। जब मैंने कहा कि एक विशाल पक्षी मोतियों के साथ, घाटी में से एक आदमी को भी उड़ा लाया था तो किसी को विश्वास न हुआ। मैंने कहा कि मैंने खुद अपनी आँखों देखा है, पर वे न माने। यही है वह आदमी-नाविक सिन्दबाद। इन्होने ही मुझे क़ीमती मोती दिये थे।" कहते हुए उन्होंने मुझे बड़ी खुशी से तुरन्त गले लगा लिया।

तब जाकर कप्तान मुझे पहचान पाया। उसने भी मेरे दोनों हाथ पकड़कर मेरा आलिङ्गन किया। फिर उसने मेरा सारा माल बन्दरगाह में उतरवाया। उसको बेचने पर मुझे अच्छा मुनाफा मिला।

सलाहिता से हम सिन्धु देश गये। वहाँ भी माल बेचा और खरीदा। वहाँ हमने गौ के मुखवाली मछलियाँ, घोड़े के मुखवाली मछलियाँ, उड़नेवाली मछलियाँ देखीं। बहुत दिनों तक समुद्र में घूमने-फिरने के बाद, हम जैसे तैसे फिर बसरा पहुँचे। फिर नदी में से होते हुए बग़दाद गये। वहाँ बन्धु-मित्रों से मिले। खुशियाँ मनाई।

क्योंकि पहली यात्रा की अपेक्षा अधिक धनी होकर वापिस आया था, इसलिए गरीबों को मैंने खूब दान-दक्षिणा दी। मैं आराम से रहने लगा।



अयोग्य दान



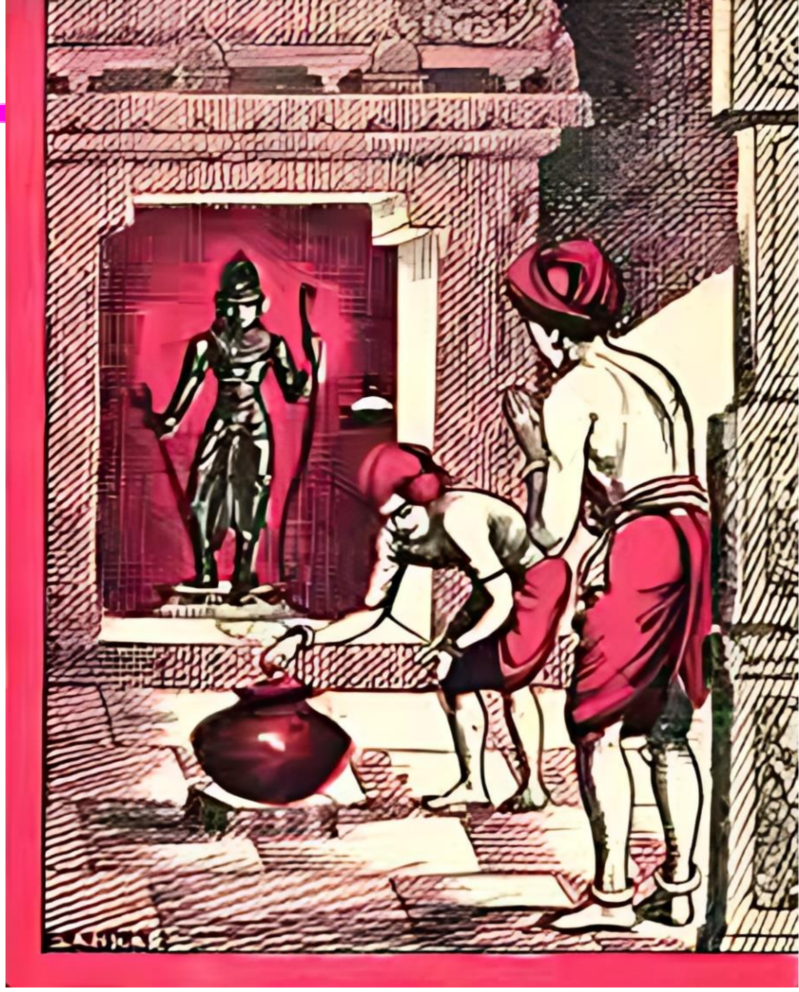
विक्रमार्क ने ज़िद न छोड़ी। वह फिर वृक्ष के पास गया, शव को उतारकर, कन्धे पर डालकर श्मशान की ओर चुपचाप चल पड़ा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा-"राजा! सचमुच तुम्हारी साधना प्रशंसनीय है। पर तुम नहीं जानते कि एक साधनाशील व्यक्ति के सामने अच्छा कार्य करने पर भी कैसी समस्यायें उपस्थित हो जाती हैं। तुम्हें शीलयाजी की कहानी सुनाता हूँ, सुनो।" उसने यह कहानी सुनाई:

किसी जमाने में, गौतमी नदी के किनारे अभयगिरि नाम के ग्राम में शीलयाजी नाम का एक ब्राह्मण रहता था। वह बहुत ही दयालु और ईश्वर भक्त था। न उसने शादी की, न उसका घर-बार ही था। पर उसके पास थोड़ी बहुत ज़मीन-जायदाद

थी। क्योंकि जमीन-जायदाद का उपयोग करने के लिए बाल-बच्चे न थे, इसलिए उसने मौत से पहले बहुत से सत्कार्य करने की ठानी। उसने एक राम का मन्दिर और उसके पास एक धर्मशाला बनवाई।

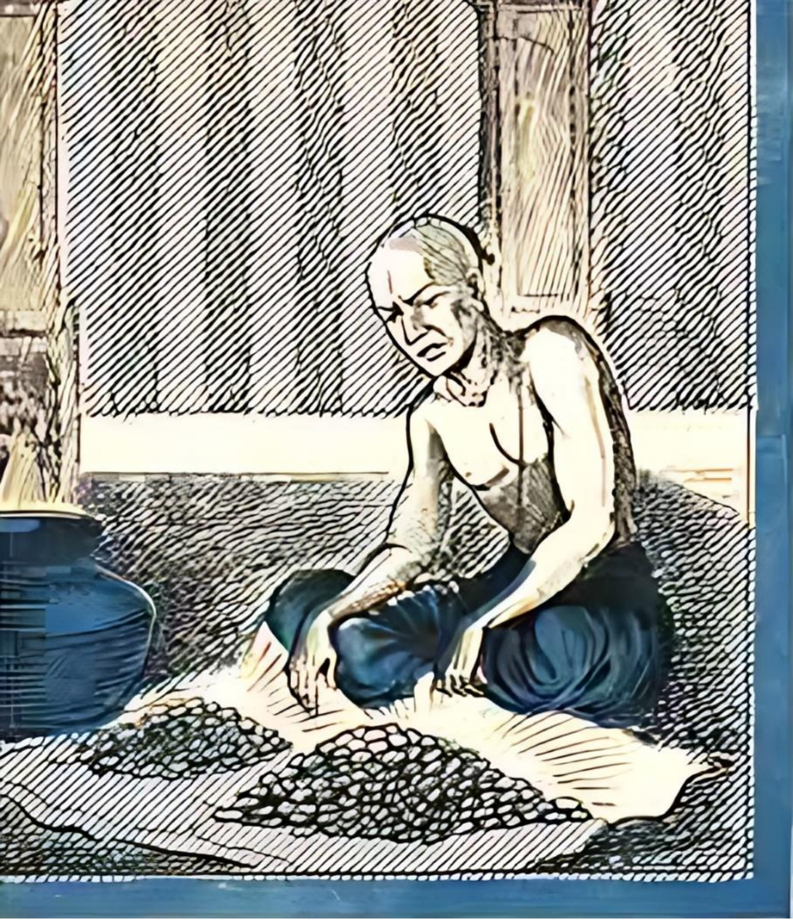
इन दोनों के बनवाने में उसकी सारी ज़मीन-जायदाद ख़तम हो गई। पर अभी कई ऐसे काम थे, जो वह करना चाहता था। जैसे मन्दिर में पूजा-पाठ का प्रबन्ध करना था, धर्मशाला में यात्रियों के लिए खाने-पीने का इन्तज़ाम करना था। धर्मशाला में एक पाठशाला और औषधालय खोलने का भी विचार था। गाँव में भी एक वेद विद्यालय चलाना था। इन सब के लिए पैसे की जरूरत थी। पर शीलयाजी चन्दा माँगना नहीं चाहता था। इसलिए उसने एक हुण्ड़ी, मन्दिर में और दूसरी धर्मशाला में रखवा दी। जितना जिसके जी में आता, उतना चन्दा उसमें डालकर चला जाता।

शुभ मुहूर्त में मन्दिर बना था। रामचन्द्र मूर्ति की कृपा से, कई भक्तों की मनौतियाँ पूरी हो गई थीं। जैसे जैसे मन्दिर की ख्याति बढ़ती गई, तैसे तैसे दूर दूर से भक्त भी आने लगे।



हुण्डियों में अधिक पैसा आने लगा। पर साथ ही खर्च भी बढ़ते जाते थे। शीलयाजी बहुत से सत्कार्य इसलिए कर नहीं पाता था, क्योंकि पैसे की तङ्गी थी। जब कोई यह पूछता-"शीलयाजी जी, पाठशाला कब खोलने जा रहे हैं? औषधालय कब चलेगा?" तो वह कहा करता-"अभी उस रामचन्द्र जी की कृपा नहीं हुई है।"

इस बीच किसी ने हल्दी के कपड़े में गाँठ बाँधकर, पाँच हज़ार अशर्फियाँ हुण्डी में डाली। उन्हें देख शीलयाजी चकित हुआ। अभयगिरि गाँव में कई रईस जरूर थे, पर



के घर की मरम्मत करवाई और बाकी पैसे से मूर्ति के लिए गहने बनवाये। कोई ऐसा न था, जो मूर्ति को देखकर खुश न हुआ हो।

थोड़े दिनों बाद किसी ने धर्मशाला की हुण्डी में दो हज़ार अशर्फियाँ डाली। शीलयाजी का आश्चर्य दुगुना हो गया। उसे न मालूम था कि कौन इतना धन दे रहा था। इसलिए वह इस हालत में न था कि उसको अपने धन्यवाद दे सके।

मुश्किल से वे एक-दो रुपये देते थे। जब कभी वे अधिक देना चाहते तो सीधे जाकर शीलयाजी को दे देते। पर अभी तक ऐसा न देखा गया था कि कोई हुण्डी में इतना धन डाल जाये और चुप रहे! आखिर किसने वह घन डाला है? फिर वे चुप भी क्यों हैं?

अगर वे चुप रहना चाहते हैं, तो उनका पता लगाना भी अच्छा न था। यह सोचकर शीलयाजी भी चुप रहा। क्योंकि वे पाँच हज़ार अशर्फियाँ मन्दिर की हुण्डी में डाली गई थीं, इसलिए उसने मन्दिर के लिए ही उपयोग करना चाहा। उसमें से थोड़ा पैसा लगाकर, उसने पुजारी

वेद विद्यालय भी खोला गया। नगर में सब शीलयाजी की प्रशंसा करके चले गये। जिस किसी ने उससे बातचीत की, उसको शीलयाजी ने गौर से देखा। पर वह दानी का अनुमान न कर पाया। यह सोचकर कि शायद रामचन्द्र जी ही उसको स्वयं धन दे रहे थे उसने अनुमान करना छोड़ दिया। जैसे जैसे वह सोचता गया, वैसे वैसे उसकी यह धारणा पक्की होती गई।

शीलयाजी को यह जानने की प्रबल इच्छा होने लगी कि रामचन्द्र जी किस रूप में आ रहे थे, ताकि उनके दर्शन

करके वह इस संसार से तर जायें। इसलिए वह रात-जगी करता और अपने घर की खिड़की में से धर्मशाला के आँगन और मन्दिर के आँगन की ओर देखता रहता।

एक महीना बीत गया। कुछ भी न हुआ। शीलयाजी को लगा कि जब तक वह देखता रहेगा, शायद भगवान न आयें। वह निराश हो गया। परन्तु एक दिन उसको एक दृश्य दिखाई दिया। अन्धेरे में कोई धर्मशाला की ओर गया। उस आदमी के हाथ में एक पोटली थी। वह हुण्डी के पास गया। उसने इधर उधर देखा और पोटली हुण्डी में डालकर, चुपचाप जल्दी जल्दी चला गया।

शीलयाजी ने उस आदमी को पहचाना। वह हरिजनवाड़ा का चोर राम था। शीलयाजी का दिल जोर से धड़कने लगा। तुरन्त बाहर जाकर वह राम का पीछा करने लगा। जब गाँव से बाहर आकर, हरिजन वाड़ा के पास गया, तो शीलयाजी ने कहा- "अरे राम, ठहर!"

राम ने रुककर अचरज में कहा- "आप हैं! हुजूर, राम राम।"



"मैंने तुझे हुण्डी में पैसा डालते हुए देखा है। कहाँ से तुझे मिला वह पैसा?" शीलयाजी ने उससे साफ साफ पूछा।

पहले तो उसने कहा कि वह कुछ न जानता था। फिर उसने बताया कि वह चोरी करके लाया था। "हुज़र! मैंने दो महीने पहले सेठ बनवारीलाल के घर में दस हज़ार अशर्फियाँ चुरायी थीं। हुजूर! उनका क्या कहना? उनके पास बहुत धन है। उनका खर्च भी कम है। तिस पर कञ्जूस हैं। अगर आप किसी अच्छे काम के लिए पैसे माँगें तो दमड़ी भी नहीं देते हैं।

फिर उतने रुपये से भला मैं क्या करता? इसलिए जब जब मौका मिला, तब तब मैं हुण्डी में डालता गया। मैंने अपने लिए थोड़ा रख लिया है। हुजूर ! मेरी पोल न खोलिये।" उसने कहा।

"तू बड़ा पापी है। एक तो चोरी करना पाप है और फिर उस चोरी के धन का चन्दा देना और भी पाप है। उस पैसे से मैंने मूर्ति के लिए हार बनवाया है। वेद विद्यालय खुलवाया है। मरने पर नरक में जाऊँगा। इसके लिए कोई पश्चाताप करना ही होगा।" शीलयाजी ने तिलमिलाते हुए कहा।

"पैसे ने क्या किया है ? पाप मैंने किया है। पैसा मेरा नहीं है, वह तो सेठ बनवारीलाल का है।" अछूत राम ने कहा।

"अरे हाँ, तो क्या सेठ बनवारीलाल के पास इतना धन है? तू दस हज़ार उठा ले गया और उसने चूँ भी न की! चोर की तरह बैठा रहा।" शीलयाजी ने कहा।

"लाख अशर्फियाँ नकद हैं। अगर यह कहेगा कि दस हज़ार चले गये हैं, तो क्या लोग उसके पास बाकी रहने देंगे? या तो चोर चुरा ले जायेंगे, नहीं तो राजा वसूल कर लेंगे। इसलिये ही चुपचाप बैठे है।"



"मैं जाकर सेठ बनवारीलाल को बता दूँगा कि उसके मनहूस पैसे के कारण मैं नरक नहीं जाना चाहता।"

"हुजूर! मैने हुण्डी में दो हजार अशर्फियाँ डाली हैं। गरीबों के लिए कुछ चिकित्सालय खुलवाइये। मुझे बचाइये। जिस बारे में सेठ बनवारीलाल स्वयं नहीं सोच रहे हैं, आप क्यों माथापच्ची करते हैं? सुना है आपने मूर्ति के लिए माला बनवाई है। पापी हूँ। अछूत हूँ, खुद अपनी आँखों से देख भी नहीं पाता हूँ।" अछूत राम ने धीमे धीमे कहा।

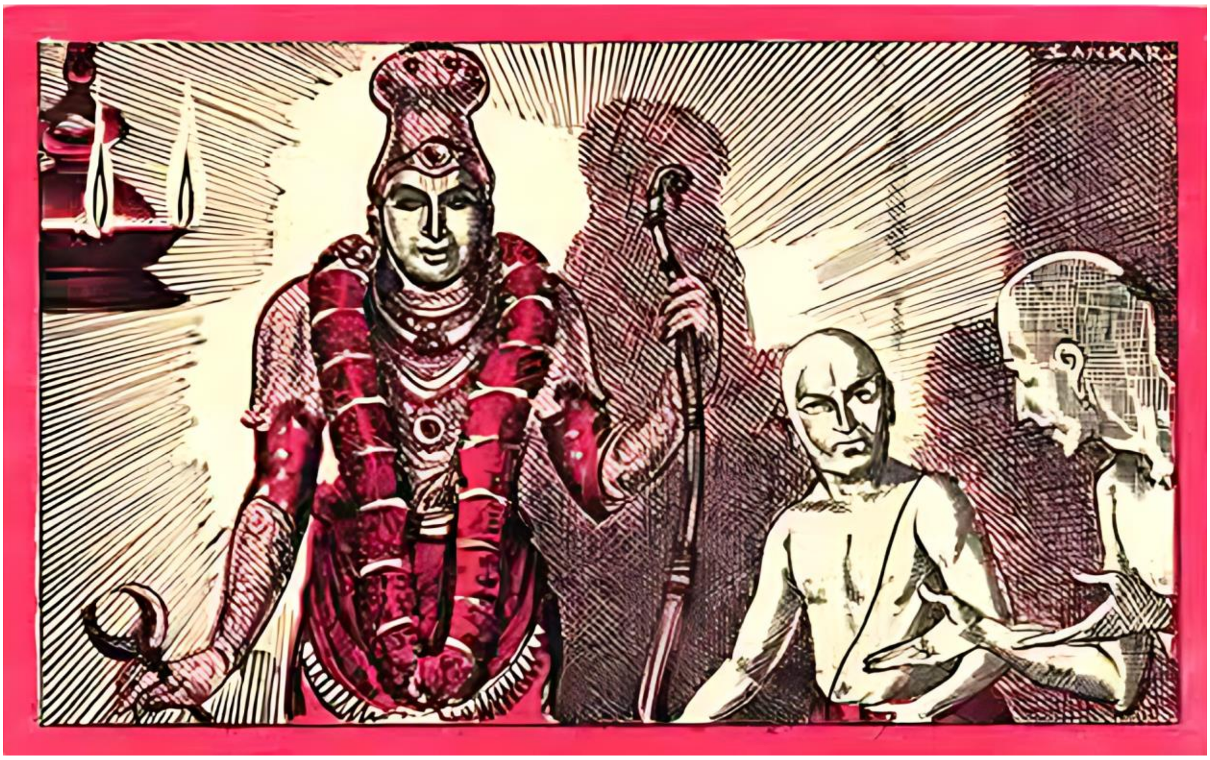
"मुझे कुछ नहीं सूझ रहा है। मुझे सोचना है। तू जा।" कहता कहता शीलयाजी घर चला गया।

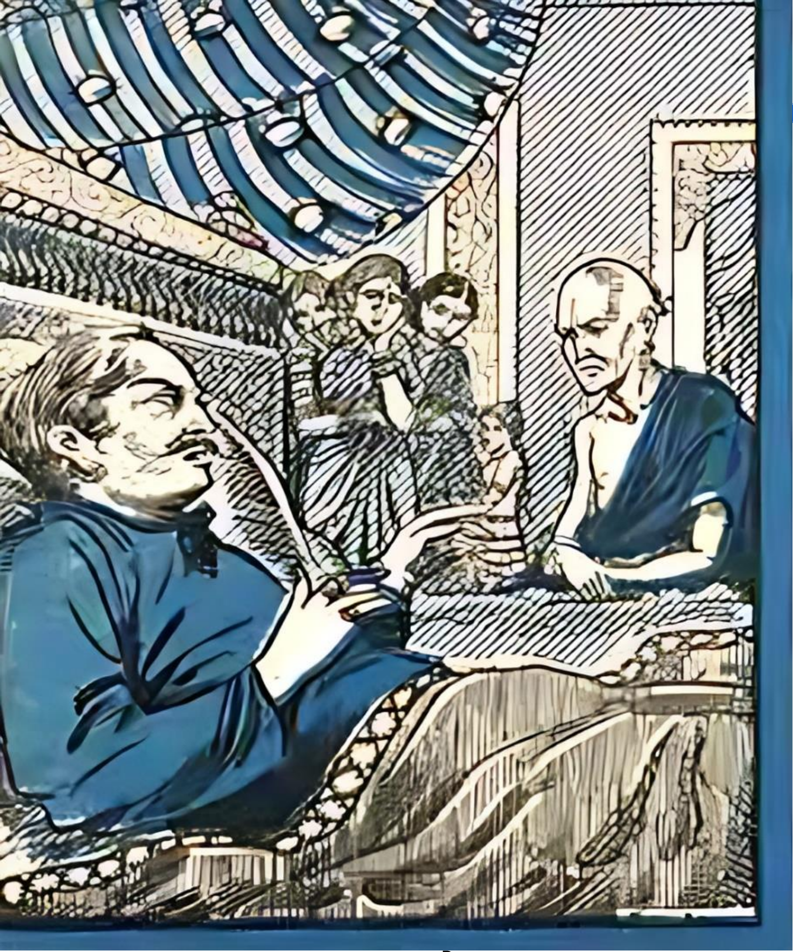
सवेरे होते ही उसने पुजारी के पास जाकर मूर्ति को दिखाते हुए कहा- "उस माला को निकाल दो।"

"क्यों?” पुजारी ने आश्चर्य से पूछा।

कहीं चोर न चुरा ले जायें। मैं अपने घर में रख दूँगा।" शीलयाजी ने कहा।

"पर हमारे गाँव में तो चोरी-चकारी तो नहीं होती? क्यों आपको इ स प्रकार अचानक सन्देह होने लगा? फिर भी क्या





ऐसे लोग भी हैं, जो मन्दिर की सम्पत्ति की चोरी करेंगे?" पुजारी ने पूछा।

शीलयाजी द्विविधा में पड़ गया। हुण्डी में अछूत का डाला हुआ धन था। उसके बारे में क्या किया जाय, वह तय न कर सका। "मैं बहुत बड़ा पापी हूँ। इस के लिए भगवान रामचन्द्र मेरी इस तरह परीक्षा ले रहे हैं। मन्दिर अशुद्ध हो गया है। सराय अशुद्ध हो गई है। पाठशाला भी अपवित्र हो गई है।" शीलयाजी को ये सब जलाती लगती थीं। हुण्डी में रखे पैसे से गरीबों के लिए दवाखाना खोला जा सकता था। पर क्या किया जाय, वह निश्चय न कर पाता था।

सप्ताह बीत गये, महीने बीत गये। इस बीच में यह भी खबर मिली कि सेठ बनवारीलाल अब और तब की हालत में थे। अगर वह मर गया तो शीलयाजी उनको अछूत चोर राम के करतूत के बारे में भी न बता पायेगा। इसलिये वह सेठ बनवारीलाल के पास दौड़ा।

बनवारीलाल मरने वाला था।

"एक ग़लती हो गई है। कुछ दिन पहले कोई आपके घर में चोरी कर गया था। उसने दस हज़ार अशर्फियों चुराई, उसमें से उसने नौ हजार मन्दिर और सराय के लिए दे दीं। खर्च होने के बाद ही मुझे इस बारे में मालूम हुआ। मैं अब आपको वह धन वापिस नहीं कर सकता। इसलिये आप मुझे अनुमति दीजिये कि मैं उस धन को आपका दान मान लूँ।" शीलयाजी ने सेठ बनवारीलाल से कहा।

सेठ बनवारीलाल बड़ा लोभी था। किसी को भूलकर भी एक पैसा न देता था, यह सब जानते थे। परन्तु आख़िरी दिनों में उनका धन पर मोह जाता रहा।

"लाख अशर्फियाँ जमा की हैं। मैने न खुद खाया, न दूसरों को खिलाया ही। आप इतने अच्छे कार्य कर रहे थे, पर मैंने आपको कानी-कौड़ी भी न दी। मैं पापी हूँ। यह चोर ही मुझ से कई गुना अच्छा है। दस हजार चोरी करके उसने नौ हज़ार आपको दे दी हैं।" सेठ ने कहा।

"चोर को आप भला कहते हैं?" शीलयाजी ने पूछा।

"मैं भी चोर हूँ। मैं एक व्यापारी के यहाँ मुनीम का काम करता था। एक बार वे समुद्र यात्रा में मुझे भी साथ ले गये। एक देश में वे बीमार पड़ गये। यह जानकर कि वे न बचेंगे, मैं उनकी तीस हज़ार अशक्रियाँ लेकर भाग आया। उस पूँजी को लगाकर, इस ग्राम में मैंने बहुत-सा धन कमाया। जब कभी मुनाफा होता तो मैं रोता-धोता कि नुकसान हुआ है। अगर कभी समुद्र में कोई नौका डूबती तो रोया करता कि उसमें मेरा भी माल था। कोई नहीं जानता कि मैं लखपति हूँ। हो सकता है कि वह चोर जानता हो। उस चोर की तरह मैं भी चोरी की हुई वे तीस हज़ार अशर्फियाँ आपको सौंप देता हूँ।



आप किसी अच्छे काम पर इसे लगाइये।" कहते हुए सेठ बनवारीलाल ने धन के थैले उन्हें दिलवा दिये।

शीलयाजी बड़ा खुश हुआ। पैसा लेकर वह घर चला आया। अछूत राम के बारे में उनका मन अब भी बीन्ध रहा था। परन्तु उन्हें अचानक एक उपाय सूझा। उसने उस दिन राम को बुलवाया।

"अरे! तेरा एक पाप धुल गया है। सेठ बनवारीलाल ने तुझे माफ़ कर दिया है। पर तुझे पाप का फल नरक में भुगतना ही होगा। पर उस पाप में मैं

हिस्सा नहीं बँटाऊँगा। ये हैं तेरे नौ हज़ार अशर्फियाँ ! ले जा। " शीलयाजी ने अछूत राम से कहा।

"मैं पापी हूँ, में उस पैसे से क्या सत्कार्य कर सकता हूँ? आप ही इसे किसी अच्छे काम पर लगाइये।" राम ने कहा।

"यह नहीं हो सकता। अगर तू अपना रुपया न ले गया तो मैं तुरन्त जाकर राजा से शिकायत कर दूँगा।" शीलयाजी ने उसे धमकी दी।

राम पैसा लेकर, नीचे मुँह करके चला गया।

वेताल ने यह कहानी सुनाकर पूछा- " राजा ! मुझे एक छोटा सा सन्देह है। शीलयाजी, अछूत राम और सेठ बनवारीलाल में कौन अधिक पुण्यात्मा है? अगर तुमने जान बूझकर न बताया तो तुम्हारा सिर फूट जायेगा। जानते ही हो।"

"शीलयाजी ने सत्कार्य तो किये थे। पर उसको पाप का भय अधिक था; अछूत राम ने पाप तो अधिक किये थे, पर वह पुण्य करना चाहता था। उसने उस मन्दिर के लिये धन दिया, जिसमें वह पैर नहीं रख सकता था, और उस वेद पाठशाला के लिए भी, जहाँ वह वेद सुन नहीं सकता था। वह पुण्यात्मा है, यह जाननेवाला व्यक्ति है, सेठ बनवारीलाल। इसलिये सेठ बनवारीलाल ही शीलयाजी से अधिक पुण्यात्मा हैं। क्योंकि उसने अछूत राम से वह सीखा था, इसलिये वह उसके समान बड़ा न था।" विक्रमार्क ने कहा।

राजा का इस प्रकार मौन-भङ्ग होते ही वेताल अन्तर्धान हो गया, और शव को लेकर, यकायक पेड़ पर यथापूर्व जा बैठा।





एक शहर के बाहर एक उजड़ा मन्दिर था। एक गरीब ब्राह्मण ने उसका पुजारी बनकर अपना जीवन निर्वाह करने की सोची। पर चूँकि उस मन्दिर में आने-जानेवाले कम थे, इसलिये पुजारी को भगवान की भाँति भूखों मरना पड़ा।

परन्तु वह ब्राह्मण निरन्तर भगवान की पूजा करता रहा। एक बार पूर्णिमा के दिन उसे एक सपना आया। सपने में ईश्वर ने दर्शन देकर कहा-"इस नगर के राजा को जाकर देखो, तुम्हारी गरीबी ख़तम हो जायेगी।"

ब्राह्मण राजमहल में गया। परन्तु उन दिनों दुर्भाग्यवश राजा बीमार था। महल के पहरेदार सिवाय वैद्यों के किसी को अन्दर नहीं जाने देते थे।

"क्या यह बिना जाने ही भगवान मुझे राजा को देखने भेजेंगे?" यह सोच ब्राह्मण ने पहरेदारों से कहा-"मैं एक वैद्य हूँ। मुझे अन्दर जाने दो।" उन्होंने उसे अन्दर जाने दिया।

परन्तु राजा के कमरे में जाने के लिए एक और अड़चन थी। तब राजा वैद्य से इतना ऊब गया था कि उन्होंने घोषणा की थी, जो वैद्य उनकी चिकित्सा न कर सकेगा, उसको काले पानी भेज दिया जायेगा।

ब्राहण यह जानकर भी न डरा। जो पानी में डूब रहा हो, उसे भला क्या ठण्ड? उसने कहा कि वह राजा की चिकित्सा करेगा। वह काले पानी की शर्त भी मान गया। उसे राजा के पास ले जाया गया। वह राजा के सामने हाथ बाँधकर खड़ा हो को गया। राजा से उसने रोग के बारे में सारी जानकारी ले ली। पर ब्राह्मण को सब सुनने के बाद, ऐसा लगा जैसे राजा को कोई

श्रीमती डी मञ्जुलता



रोग न हो। रोग का बहाना करके राजा चारपाई पकड़े हुए था। और वहम की बीमारी की तो कोई दवा होती ही नहीं है। इसलिये कोई वैद्य भी उनका इलाज न कर पाया था। ब्राह्मण काफी देर तक इस तरह बैठा रहा, जैसे रोग के बारे में सोच रहा हो। फिर राजा का रोग ठीक करने का उसे उपाय सूझा। उसने आख़िर तीन बार सिर हिलाकर कहा-"महाराज! आपके रोग की एक बहुत अच्छी औषधी है। अगर आपने मेरे कहे अनुसार उसका तीन बार सेवन किया तो आपका रोग काफूर हो जायेगा।"

राजा ने उत्सुकता से पूछा-"कहिये, जैसा आप कहेंगे, वैसा ही करूँगा।"

"मैं कषाय दूँगा। उसे रानी जी को स्वयं आपके मुँह में डालना होगा। तीन घूँट ही आप पीजिये। परन्तु जब रानी आपके मुँह में कषाय डाल रही हों, या आप पी रहे हों, तो आपका हाथियों व घोड़ों के बारे में नहीं सोचना होगा। अगर आपने सोचा तो दवा का असर न होगा। फिर मुझे बुरा-भला कहने से भी कोई फ़ायदा न होगा।" ब्राह्मण ने सविनय कहा।

राजा ने हँसकर कहा-"यह तो कोई कठिन बात नहीं है। आखिर दवा पीने के समय, घोड़ों और हाथियों के बारे में सोचने की भी क्या जरूरत है?"

अगले दिन ब्राह्मण ने कोई कषाय तैयार करके भेजा। उसको पिलाने के लिए रानी आई। वह दवा पिला रही थी कि रथ का शब्द कहीं से सुनाई दिया। तुरन्त उसे घोड़े याद आये। उसने राजा के मुख में दवा न डाली। इतने में राजा ने कहा-"कोई फायदानहीं, मुझे घोड़ा याद आ रहा है।"

जब दूसरी बार रानी ने उसके मुख में दवा डालने की कोशिश की तो राजा ने कहा-"ठहर, मुझे हाथी याद आ रहे हैं।" तब से, जब कभी वे दवा के बारे में सोचते, या तो वे हाथियों के बारे में सोचते, नहीं तो घोड़ों के बारे में।

एक महीना बीत गया। राजा ने ब्राह्मण को बुलवाकर पूछा-"क्यों भाई! जब कभी तुम्हारी दवा पीने की कोशिश करता हूँ तो सिवाय घोड़ों और हाथियों के कुछ याद नहीं आता। क्या किया जाय?"

"महाराज! इसका एक ही उपाय है। आप अपने घोड़ों और हाथियों को किसी ब्राह्मण को दान दे दीजिये। तब आपको वे याद नहीं आयेंगे और आपका रोग भी दूर हो जायेगा।" ब्राह्मण ने कहा। "और किसी को भला क्यों, तुम ही उन्हें लेते जाओ।" राजा ने कहा।

राजा ने दान देने की तैयारी की। कई कर्मचारी आये। राजमहल के घोड़ों और हाथियों की सूची बनाई गई। राजा ने स्वयं उठकर देखा कि सूची ठीक थी कि नहीं। वे उस काम में इतने मशगूल हो गये कि वे अपनी बीमारी के बारे में ही भूल गये।

"दान करने से पहले ही राजा की बीमारी ठीक हो गई है।" सब ने कहा।

ब्राह्मण ने राजा के दिये हुए हाथियों और घोड़ों का दान लेकर कहा- "चिकित्सा पूरी हो गई। अब मुझे जाने की अनुमति दीजिये।" राजा को भी ऐसा लगा, जैसे उसकी बीमारी ठीक हो गई हो। उसने ब्राह्मण को खूब ईनाम दिये।

उस धन से ब्राह्मण ने मन्दिर की मरम्मत करवाई और उस में नित्य भगवान की पूजा करता सुख से रहने लगा।





[३]

[मोहन ट्रोय नगर उत्सव देखने गया। वहाँ पर राजा वर्धन को इस बात का पता चला कि मोहन उसी का बेटा है। मोहन की भुवन सुन्दरी के पति प्रताप से दोस्ती हुई। प्रताप को स्पार्टा में न पा मोहन भुवन सुन्दरी को लेकर ट्रोय नगर पहुँचा और उससे शादी भी कर ली। ग्रीकों ने भुवन सुन्दरी को वापिस भेजने के लिए दूत भेजे, पर उन्हें निराश लौटना पड़ा। उसके बाद....]

जब भुवन सुन्दरी को वापिस लाने का प्रयत्न असफल रहा तो प्रताप को इस पर बड़ा गुस्सा आया। इस अपमान का बदला लेने के लिए उसने बहुत सोचा। आखिर उसने ग्रीक राजकुमारों के पास यह खबर भेजी-"जब मेरा विवाह भुवन सुन्दरी के साथ हुआ था,तब आप लोगों ने शपथ ली थी कि आप मेरी सहायता करेंगे। अब वह समय आ गया है। मेरी पत्नी को वापिस लाने में आप मेरी सहायता कीजिए।"

यही नहीं, प्रताप ने सारे ग्रीस का दौरा किया, और एक एक राजा के पास जाकर कहा कि वह अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए आये।



इथाका के राजा रूपधर के पास, प्रताप अपने भाई के साथ गया। परन्तु रूपधर ने पहले ही निश्चय कर लिया था कि वह युद्ध में शामिल न होगा। उसके न शामिल होने का यह कारण था कि अगर वह ट्रोय नगर गया, तो वापिस आते समय उसे बड़ी बड़ी मुसीबतें झेलनी पड़ेगी, और वह बीस वर्ष तक घर वापिस न आयेगा, ऐसी आकाशवाणी कभी हुई थी।

इसलिए युद्ध में न शामिल होने के लिए रूपधर ने एक चाल चली। सिर पर एक पगड़ी बाधी, बैल और गधे को जोत कर खेत में नमक फेंकता हुआ, खेत जोतने लगा। बगल में उसकी पत्नी पद्ममुखी गोद में, अपने लड़के धीरमति को लेकर खिन्न खड़ी थी।

रूपधर ने न केवल पागल का स्वाङ्ग ही रचा, अपितु उसने प्रताप और राजा को न पहचानने का ढोङ्ग भी किया। परन्तु वे उसको चाल में न आये। पद्ममुखी की गोद से उन्होंने लड़के को जबर्दस्ती छीन लिया और उसको हल के सामने डाल दिया। रूपधर ने लगाम खींच कर झट हल को रोक दिया। यह साफ पता लग गया कि वह पागल न था। रूपधर को लाचार हो युद्ध में शामिल होना ही पड़ा। ट्रोय पर युद्ध करने के लिए जो लोग एकत्र हुए थे, उनमें कई ऐसे भी थे जिनमें युद्ध के लिए कतई जोश न था। एक राजकुमार ने जिसने पचास जहाज़ भेजने का वादा किया था, एक ही जहाज़ भेजा। उसी जहाज़ के अन्दर चालीस जहाज़ थे। वे मिट्टी के बने हुए थे।

* * * *

ग्रीक लोगों ने ज्योतिषियों द्वारा जान लिया कि बिना वज्रकाय नाम के युवक

की सहायता के ट्रोय नगर नहीं जीता जा सकता था। यह तटिनी नामक स्त्री का सातवाँ लड़का था। इस उद्देश्य से कि उसका लड़का संसार का सबसे बड़ा योद्धा हो, तटिनी ने अपने लड़के को पकड़कर स्टिक्स नदी में डुबाया था। इसलिए उसका शरीर वज्र के समान कठोर हो गया था। परन्तु उसकी ऐड़ी कड़ी न हुई थी; क्योंकि माँ ने उसको वहाँ पकड़ रखा था। वज्रकाय जब छोटा ही था तो शिकार में, दौड़ में, बहादुरी में, सङ्गीत में और अन्य बहुत-सी कलाओं में उसकी बराबरी करनेवाला कोई न था। उसने छः साल की उम्र में ही एक जङ्गली सुअर को मार दिया था। इरिण, बारहसिङ्गों को वह दौड़कर बड़ी असानी से पकड़ लेता था।

वज्रकाय को युद्ध में शामिल करने के लिए रूपधर, भूधव, नवद्योत बगैरह, गये। परन्तु तटिनी-उसकी माँ, यह जानती थी कि उसका लड़का ट्रोय नगर पर आक्रमण करने जायेगा तो वापिस न आयेगा। इसी आशङ्का के कारण, उसने उसको स्त्री का वेश पहना करके, किसी राजा के अन्तःपुर में रख रखा था।



वज्रकाय को बुलाने के लिए आये हुए व्यक्तियों ने अन्तःपुर के सभी आदमियों को टटोल-टटोल कर देखा। उनमें उन्हें वज्रकाय न दिखाई दिया। रूपघर को यह सन्देह हुआ कि वह कहीं स्त्री के रूप में वहीं कहीं छुपा हुआ न हो। उसको खोज निकालने के लिए रूपधर को एक चाल सूझी। वह अन्तःपुर की स्त्रियों के लिए बहुत से उपहार लाया। उनमें स्त्री की पोशाक, गहने बगैरह भी थे। उनके साथ एक भाल और ढाल भी थी। इन सब उपहारों को एक जगह इक्ट्ठा

करके, उसने अन्तःपुर की स्त्रियों के पास खबर भिजवाई कि वे जो चाहे ले जायें। जब स्त्रियाँ आकर चीजें चुन रही थीं, तब रूपधर की आज्ञा पर राजभवन में भेरियाँ बजने लगीं। वह शब्द सुनते ही वज्रकाय ने स्त्री के कपड़े फेंक, ढाल और भाल सम्भाल लिये। तुरन्त उसको रूपधर आदि ने पहचान लिया और पकड़ लिया।

* * * *

औलिस के पास ग्रीक लोगों के जहाज़ एकत्र थे। इस बीच में, क्रीट से दूतों ने आकर एक खबर दी। क्रीट के राजा प्रभु ने ख़बर भिजवाई थी कि अगर उसको भी राजा के साथ सेना का नायकत्व सौंपा गया तो वह अपने सौ जहाज युद्ध के लिए भेज देगा। प्रभु भी उन्हीं राजकुमारी में एक था, जो भुवन सुन्दरी के स्वयंवर में उपस्थित हुए थे। उसके बारे में यह कहा जाता था कि वह बहुत सुन्दर था। उसकी बात मान लेने के सिवाय कोई दूसरा उपाय नहीं था। इसलिए उन्होंने उसकी बात मान ली। फिर वह अपने सौ जहाजों को लेकर आ पहुँचा।



जब सीक सेना युद्ध के लिए निकली, तो उनमें ये पदाधिकारी थे :

सारी सेना का सेनापति राजा था। उपसेनापति के पद पर रूपधर, प्रबोध और देवमय थे। जहाजों का सरदार वज्रकाय था। उसके नीचे थे, भूधव और रक्तवर्मा। पिलीस का राजा नवद्योत, योद्धाओं में सब से अधिक वृद्ध थे। वह युद्ध में बड़ा प्रवीण था। बुद्धिमान भी था। उसने तीन पीढ़ियों का परिपालन किया था। उम्र के बावजूद वह युद्ध में अब भी बड़ा बहादुर था। राजा उसकी सलाह के बगैर कुछ भी न किया करता था। युद्ध के विषय में जब कभी कोई समस्या होती तो रूपधर और नवद्योत एक ही तरह सोचते, दोनों की एक ही राय होती। उन दोनों में कभी भी कोई मतभेद नहीं होता था।

भूधव भी एक मुख्य योद्धा था। वज्रकाय के बाद, बहादुरी, सौन्दर्य में वह ही था। वह देवताओं की भी परवाह न करता था। जब वह युद्ध के लिए निकला तो बुजुर्गों ने उसे यों आशीर्वाद दिया-"बेटा! युद्ध में अपना पराक्रम दिखाकर देवताओं की सहायता से विजयश्री प्राप्त करो।" तब





उसने झट कहा-"देवताओं की सहायता से तो डरपोक भी विजय पाते हैं। मैं बिना उनकी सहायता के जीतूँगा।"

उपभूधव भुधव का बन्धु न था। भाला फेंकने में, उसके समान ग्रीक सेना में कोई न था। दौड़ में भी उसको जीत सकनेवाला केवल वज्रकाय ही था।

देवमय, भुवन सुन्दरी को बहुत चाहता था। मोहन का उसको उठा ले जाना, उसे बहुत बुरा लगा था। इसलिए, उससे बदला लेने के लिए वह भी सन्नद्ध हो गया और युद्ध में शामिल हुआ था।

डीलोस के राजा, मुष्कर ने सेना के लिए आवश्यक रसद वगैरह इकट्ठी करके दे दी। युद्ध के लिए निकलने से पहले राजा ने देवताओं की पूजा करवाई। उन्हें बलियाँ दी। कांशुक नाम का ज्योतिषी जहाजों को रास्ता दिखाने के लिए नियुक्त किया गया। सच कहा जाय तो कांशुक समुद्र के मार्गों से परिचित न था। वह केवल ज्योतिषी ही था। इसलिए ग्रीक सेना बिना किसी योग्य मार्ग-दर्शक के ही निकल पड़ी। अतः उनका ट्रोय नगर जाना तो अलग; वे दक्षिण में, मिसिया के किनारे पहुँचे।

ग्रीक सेनायें, यह सोचकर कि वे टोय नगर पहुँच गये हैं, उतरकर मिसिया पर हमला करने लगे। यह सुन, मिसिया के राजा ने उनका मुकाबला करने के लिए अपनी सेनायें भेजी। युद्ध में, ग्रीक सेना को मुँह की खानी पड़ी। अगर मौके पर, वज्रकाय ने आकर मिसिया की सेना का मुक़ाबला न किया होता, तो सारी की सारी ग्रीक सेना नष्ट हो जाती।

इस बीच में ग्रीक लोगों ने जान लिया कि वे ट्रोय नगर न पहुँचे थे। वे फिर

अपने जहाजों में निकले। परन्तु समुद्र में इतना बड़ा तूफ़ान आया कि जहाज़ तितर-बितर हो गये; अलग अलग रास्ते पर चलने लगे। फिर वे एक साथ न मिल सके। एक एक ग्रीक राजकुमार, अपने अपने जहाजों को अपने अपने देश ले गया। इस प्रकार ट्रोय पर किया गया पहला आक्रमण असफल रहा।

परन्तु एक साल भी न हुआ था कि फिर ग्रीक सेना को ट्रोय पर आक्रमण करने के लिये एकत्रित किया गया। कई दिनों तक जहाज़ों के लिए अनुकूल हवा न मिली। फिर देवताओं को बलि देने के बाद हवा ठीक चलने लगी। जहाज़ निकल पड़े। लम्बी सफर के बाद, वे लिस्बोस द्वीप के किनारे पहुँचे। उस द्वीप के राजा ने ग्रीक वीरों का आतिथ्य किया। परन्तु उसने इन बीरों को मल्लयुद्ध के लिए ललकारा। वह राजा मल्लयुद्ध में बड़ा माहिर था। ग्रीक की तरफ से रूपधर लड़ा, उसने राजा को चित कर दिया। ग्रीक लोगों की खुशी का ठिकाना न रहा। बड़े उत्साह से वहाँ से निकलकर उनके जहाजों ने टेनडोस ट्रोय के किनारे लङ्गर डाला।



टेनडोस, से ट्रोय नगर करीब बीस मील दूर था। ट्रोय के किले के ऊपर से, यह द्वीप दिखाई पड़ता था। बाकी सब को, उस द्वीप में रखकर रूपघर, भुवन सुन्दरी का पति प्रताप, प्रबोध दूत के रूप में ट्रोय नगर गये। वे यह कहने जा रहे थे कि भुवन-सुन्दरी को भलमनसाहत से सौंप देने में ही भला था। परन्तु ट्रोय नगर के निवासियों ने तो कभी का निश्चय कर लिया था कि वे भुवन सुन्दरी को वापिस न भेजेंगे। उनके कहने का तो कोई फायदा हुआ ही नहीं, बल्कि उनको मारने का भी प्रयत्न किया

गया। परन्तु, दूतों के मेजवान ने मारनेवालों को रोका और कहा कि वह दूतों पर ऐसा कार्य कभी न होने देगा।

फिर ग्रीक जहाज, टेनडोस द्वीप से ट्रोय नगर चले आये। जहाज़ों पर से ट्रोय नगर के किले की दीवारें दिखाई देती थी। ग्रीक जहाजों को आता देख नगर वासी समुद्र के किनारे इकट्ठे हो गये और जहाजों पर पत्थरों की वर्षा करने लगे।

इन पत्थरों का कोई प्रभाव उन जहाजों पर न पड़ा; वे जहाज़ किनारे पर आने लगे। परन्तु अब एक बड़ी समस्या पेश हुई। ट्रोय भूमि पर पहले कौन कदम रखे? इस समस्या का कारण यह था कि ज्योतिषियों ने कह रखा था कि जो कोई पहले ट्रोय नगर में कदम रखेगा, वह सब से पहले युद्ध में मरेगा। इसलिए वज्रकाय जैसा साहसी भी पहले पहल उतरने में ज़रा हिचका। वह देखते देखते अपने को युद्ध में मरते नहीं देखना चाहता था।

यह बहादुरी का कान करनेवाला चन्द्रप्रभु ही था। उसने जहाज से उतरते उतरते ही कई शत्रुओं का काम तमाम कर दिया। उसको बीरसिंह ने मार दिया।

चन्द्रप्रभु के बाद वज्रकाय जहाज़ से उतरा। उसके पीछे उसके साथ आये हुए सैनिक उत्तर पड़े। वज्रकाय ने ट्रोय नगर के कई सैनिकों को मार दिया। उसके सैनिक नगर के अन्दर बढ़े। इस बीच में ग्रीक सैनिक जहाजों में से उतर आये।

[अभी और है]





काम्भोज देश के राजा का नाम चित्रवर्मा था। गद्दी पर चढ़ने के बाद भी उसने शादी न की। वह अपना अधिक समय शिकार में बिताता। यह देखकर कि वह कुँवारा ही रहना चाहता है, मन्त्रियों और नगर के बुजुर्गों ने उससे निवेदन किया-"प्रभू! हमें महारानी की कमी बहुत अखर रही है। जैसे सन्तान का होना आपके भविष्य के लिए अच्छा है, वैसे ही युवराज का होना देश के भविष्य के लिए अच्छा है। इसलिये हमारी प्रार्थना स्वीकार कर आप तुरन्त विवाह कर लीजिये।"

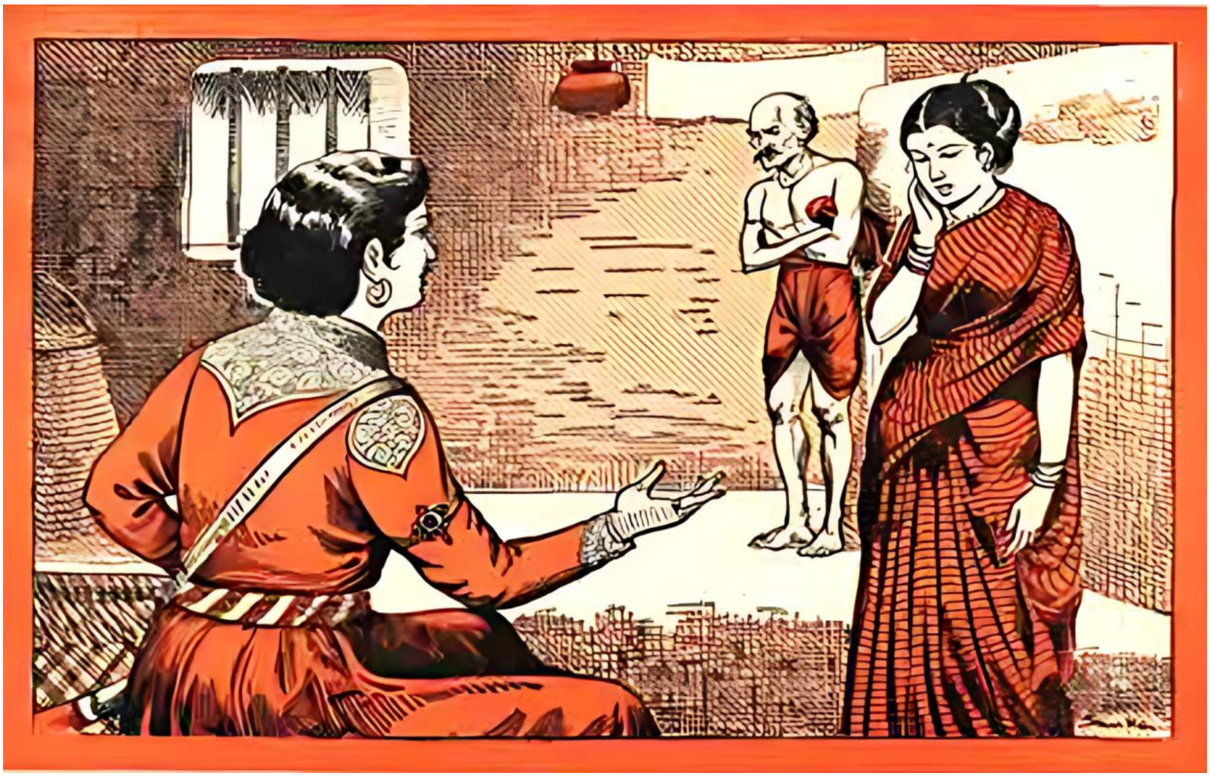
चित्रवर्मा थोड़ी देर सोचता रहा। फिर उसने कहा-"मैं आपकी बात को ठुकराना नहीं चाहता। पर मेरी शर्त यह है कि मैं अपनी पसन्द की कन्या से ही विवाह करूँगा। उसके कुल, परिवार, आदि की आपको परवाह नहीं करनी चाहिये। अगर आप यह मान गये तो मैं विवाह कर लूँगा।"

मन्त्री वगैरह इस शर्त को खुशी खुशी मान गये। परन्तु वे यह अनुमान न कर पाये कि राजा किस लड़की से शादी करने जा रहा था। नगर के पास वाले गाँव में एक गरीब किसान की लड़की रहा करती थी। उसका नाम था गुणवती। वह बड़ी सुन्दर थी। बिना किसी गहने, रेशमी साड़ी व साज-सजावट के ही वह खूबसूरत थी। सौन्दर्य के साथ उसका स्वभाव भी मधुर था। चित्रवर्मा ने उसे पहले ही देख रखा था। देखते ही उसने निश्चय कर लिया था कि यदि वह कभी शादी करेगा, तो उस जैसी लड़की से ही करेगा। परन्तु उसके राजा होने के कारण, वह उससे

शादी नहीं कर सकता था। अगर शादी कर भी लेता तो मन्त्री और दरबारी उस पर होहल्ला करते। प्रजा भी उसको रानी के रूप में स्वीकार नहीं करती। इसी कारण चित्रवर्मा आजीवन ब्रह्मचारी रहना चाहता था।

चित्रवर्मा ने यह न बताया कि बधू कौन थी; पर वह विवाह की तैयारियाँ करने लगा। यहाँ तक कि उसने विवाह का मुहूर्त भी निश्चय करवा लिया। वर बनकर वह अनेक उपहारों के साथ, गुणवती के पिता के घर की ओर निकल पड़ा। जब वर की पालकी गरीब किसान के घर के सामने रुकी तो सब को अचरज हुआ।

वर के वेश में, राजा ने गरीब किसान को बुलाकर कहा-"अपनी लड़की को बुलाओ।" डरती घबराती गुणवती आई। "मैं तुम से शादी करने आया हूँ। क्या तुम्हें मञ्जूर है?" चित्रवर्मा ने पूछा। "मेरे पहले जन्म का फल है।" गुणवती ने कहा। तुरन्त राज सैनिकों ने किसान के घर को सजाया। स्त्रियों ने गुणवती को सुन्दर साड़ियों और अच्छे अच्छे गहनों से सजा-धजा कर दुल्हन बनाया। ठीक मुहूर्त

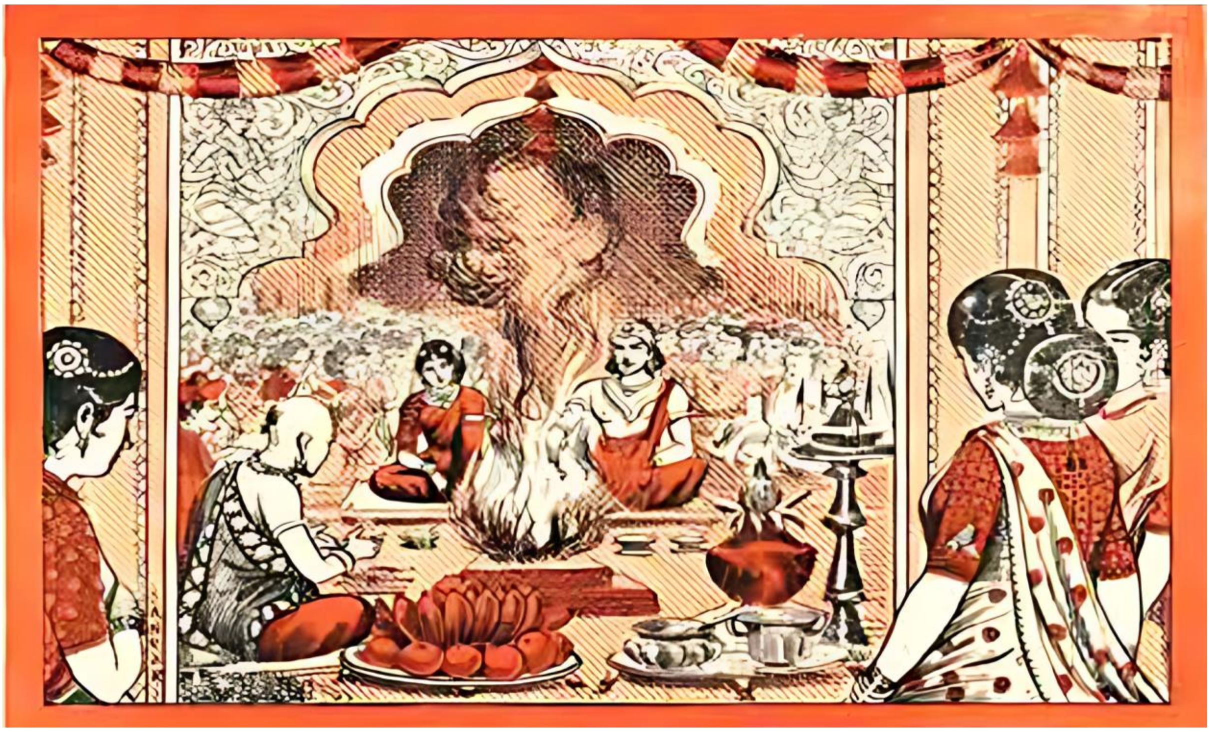


में दोनों का विवाह भी हो गया। मन्त्रियों और सामन्तों ने इस पर कोई आपत्ति न की, क्योंकि उन्होंने वचन दे रखा था। विवाह समाप्त होते ही चित्रवर्मा अपनी पत्नी को राज महल में ले गया।

होने को तो शादी हो गई थी, पर राजा के सेवकों के मन में यह ख्याल बना रहा कि रानी उच्च कुल की नहीं थी। प्रजा का तो कहना ही क्या? उसकी नज़र में राजा और रानी नीचे हो गये।

परन्तु चित्रवर्मा नादान न था। वह जान गया कि लोग उसके विवाह का समर्थन नहीं कर रहे थे और वह यह भी जानता था कि लोगों की धारणा को बदलना उसका कर्तव्य था। एक बार उसने गुणवती से कहा-"तुम यह न समझो कि रानी बन जाने के कारण वैभव और ऐश्वर्य सब तुम्हारे हैं। राजा का जीवन तलवार की धार पर चलने के समान है। जाने कितनी ही मुसीबतों को झेलना पड़ता है। कभी यह बात भी सोची है?"

"स्वामी! ये ऐश्वर्य मैं नहीं चाहती हूँ। अगर आप कहें कि आप के साथ जङ्गल में रहूँ, मैं रहने के लिये तैयार हूँ। मैं





दीजिये। उसको ले जाकर...." वह इससे अधिक न कह पाया।

"कोई बात नहीं, मालिक की आज्ञा पर चलना हम सब का कर्तव्य है।" कहते हुए, उसने पालने में से बच्चे को निकाल कर चुम लिया और सैनिक को देकर कहा-"देखना! मेरी लड़की को किसी तरह की तकलीफ न हो।" सैनिक रो पड़ा। गुणवती भी अपने को काबू में न रख सकी।

आपके लिए सब कुछ करने के लिए तैयार हूँ।" गुणवती ने कहा। चित्रवर्मा यह सुन मन ही मन खुश हुआ। पर उसने अपनी खुशी गुणवती को जानने नहीं दी।

कुछ दिनों बाद, गुणवती की एक लड़की हुई। चित्रवर्मा ने पत्नी के कमरे में जाकर कहा-"तुमने लड़की को जन्म दिया है, यह जानकर सब बुरा-भला कह रहे हैं। अगर लड़का होता तो शायद वे इतना शोर नहीं करते।" गुणवती आसूँ बहाकर रह गई।

कल नामकरण संस्कार था कि अन्तःपुर के एक सैनिक ने गुणवती के पास आकर कहा-"मालकिन! राजा की आज्ञा है। आप बच्चे को

चित्रवर्मा ने अपनी लड़की को बिना किसी को कहे, अपने मामा के घर भिजवा दिया। उसका मामा भीमपुर का राजा था। वहाँ उस लड़की का पालन-पोषण होने लगा। उसे किसी चीज़ की कमी न थी। इस बात के बारे में, न गुणवती ही कुछ जानती थी, न मन्त्री सामन्त गैरह ही। काम्भोज देश की जनता को भी कुछ न मालूम था। पर यह ज़रूर देश भर में फैल गया कि राजा ने अपनी लड़की को मरवा दिया है। इस अफवाह के कारण कई गुणवती से सहानुभूति भी करने लगे।

"राजा को उनसे विवाह नहीं करना चाहिये था। विवाह के बाद बच्चे तो होते ही हैं।



क्या उन्हें मारा जाता है? उस विचारी माँ की क्या हालत होगी ?" लोग सोचा करते। तीन-चार वर्ष बीत गये। गुणवती को फिर गर्भ हुआ। इस बार लड़का पैदा हुआ। चित्रवर्मा ने पत्नी के कमरे में जाकर कहा- "यह जानकर कि तुमने लड़के को जन्म दिया है, प्रजा खौल रही है। कह रही है-क्या यह किसान हमारा राजा होगा?" गुणवती की आँखों से अविराम आँसू बह रहे थे। दस दिन बाद राजा ने अपने लड़के को भी, उसकी माँ के पास से मँगवा लिया, और उसको भी भीमपुर भेज दिया।

फिर यह अफवाह उड़ी कि राजा ने अपने लड़के को भी लड़की की तरह मरवा डाला है। इस बार मन्त्री और सामन्तों को भी गुणवती पर दया आई। "किसान की लड़की रानी हो सकती है तो क्या ऐसा लड़का, जिसमें आधा क्षत्रिय का खून है, राजा नहीं हो सकता? ऐसी हालत में तो राजा को गुणवती से शादी ही नहीं करनी चाहिये थी। पर उसके लड़के को इस तरह मरवा देना सरासर अन्याय है।" मन्त्री-सामन्तों ने कहा।

जब दो बार इस तरह होने पर भी गुणवती अपने पति के सामने न रोई-घोई, न किसी के सामने ही उसने कुछ कहा। वह रानी के अनेक कर्तव्य, बड़ी श्रद्धा और नियमित रूप से करती गई। उनके कारण राजमहल में किसी प्रकार की खलबली न हुई। अपनी पत्नी का साहस देखकर चित्रवर्मा के आनन्द की सीमा न थी। पर वह अपना आनन्द कभी दिखाता न था।

फिर चार साल बीत गये। चित्रवर्मा ने गुणवती से कहा- "मैने तुम से शादी करके बड़ी गलती की। एक दिन के लिए

भी प्रजा तुम्हें रानी नहीं समझेगी। में आठ वर्ष तक सब्र करता रहा, पर कोई फायदा न हुआ। तुम्हें छोड़ कर, मैं किसी क्षत्रिय कन्या से शादी करना चाहता हूँ।"

"उसमें गलती क्या है? क्योंकि आप दयालू हैं, इसीलिये मुझे अभागा जान कर भी आपने आठ साल रखा। और कोई होता तो मुझे कभी का बाहर भेज देता। मुझे मायके भेज दीजिये और आप उपयुक्त कन्या से विवाह कर लीजिये।" गुणवती ने कहा। उसी दिन राजा ने उसको उसके गरीब पिता के पास भेज दिया। वह पिता के घर पर, पहले की तरह आँगन, आदि, बुहारती, बर्तन माँजती, उपले बनाती। उसमें तनिक भी यह अभिमान न था कि कल परसों तक वह एक महारानी थी। पर प्रजा में ऐसा कोई व्यक्ति न था, जिसने राजा को गाली न दी हो।

और चार साल बीत गये। चित्रवर्मा ने मन्त्री सामन्तों को बुलाकर पूछा-"मैं उपयुक्त लड़की को देखकर फिर शादी कर लेना चाहता हूँ। आपकी क्या सलाह है?"

तब उन्होंने कहा-"जब से आपने पहिली पत्नी को छोड़ा है, तब से अन्तःपुर

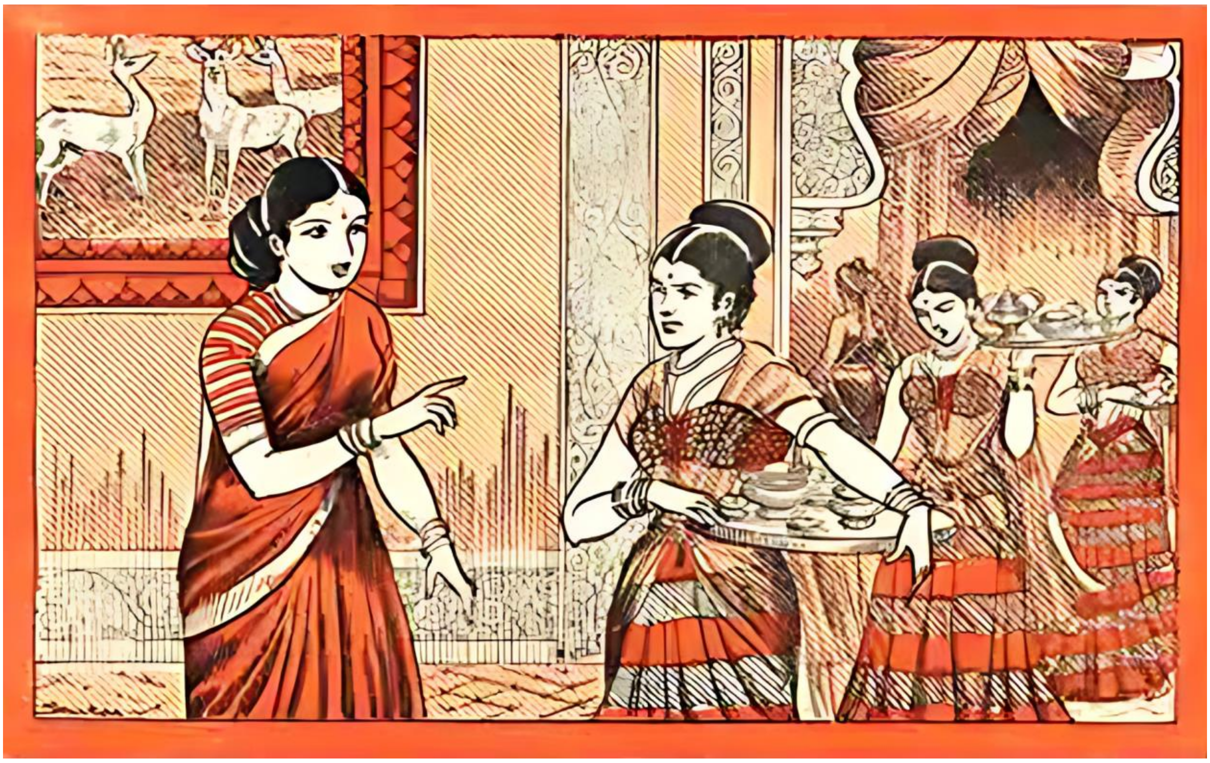


में अराजकता और अशान्ति फैली हुई है। वे बहुत योग्य थीं। भले ही वे उच्च कुल में न पैदा हुई हो, पर उनको प्रजा और नौकर चाकरों का आदर प्राप्त था। इस बार कुल, मान-मर्यादा की परवाह न कर किसी गुणवती कन्या से शादी कीजिये।"

"अच्छा तो मैं तुम्हारी इच्छा के अनुसार करूँगा। मुहूर्त निश्चित करवाओ।" राजा ने कहा।

मुहूर्त निश्चित हो गया। चित्रवर्मा ने गुणवती को बुलवाकर कहा-"मैं शादी करने की सोच रहा हूँ। उसके लिए तुम्हारे सिवाय कोई आवश्यक प्रबन्ध नहीं कर सकता। तुम नगर के बड़े बुजुर्गों को भी अच्छी तरह जानती पहचानती हो। इसलिये मेरी शादी के लिए जो कुछ तैयारियाँ करनी हैं, वे सब तुम्हें करनी होंगी।"

"आपकी कृपा।" गुणवती ने कहा। वह मन में कितनी दुःखी भी, किसी को न मालूम था। परन्तु विवाह का प्रबन्ध उन्होने इस तरह किया कि कोई भी अँगुली उठाकर कुछ न कह सका। इस बीच में राजा ने अपने मामा के घर से अपने बच्चों



को बुला भेजने का इन्तज़ाम किया। चित्रवर्मा उनको जुलूस के साथ नगर में लाया। क़रीब बारह वर्ष की राजकुमारी को देखकर लोगों न सोचा कि शायद वह ही दुल्हन है। कई ने उसकी तुलना पहली रानी से करके कहा-"उस गृहीणी का स्थान भला यह छोटी सी लड़की कैसे भर सकेगी?" प्रजा की तरह गुणवती का भी यही खयाल था। उसने चित्रवर्मा के पास जाकर कहा-"महाराज! मैं तो कष्टों की आदी हूँ। परन्तु यह लड़की खूब वैभव से पाली-पोसी गई है। जैसे आपने मुझे देखा है, वैसे इसे न देखना।"

उसी समय मन्त्री और सामन्तों ने राजा के पास आकर कहा-"महाराज! हमने आपकी पहली शादी पर कोई आपत्ति न की थी। पर आपको इस बार हमारी सुननी ही होगी। इस छोटी नादान कन्या से आपका विवाह करना हमें बिल्कुल पसन्द नहीं है। हमें यह भी विश्वास नहीं है कि ये पहली रानी से किसी कदर अच्छी रहेंगी। ये तो इतनी छोटी हैं कि अभी तक उनकी बचपन की शरारत भी नहीं गई है।"

चित्रवर्मा ने हँसकर कहा-"आज जो लड़की आई है, वह मेरी ही लड़की है और वह मेरा लड़का है।"

"तो दुल्हन कहाँ है?" मन्त्रियों ने पूछा।

"यह लो।" कहते हुए, मोटी साड़ी पहने हुए, किसान-स्त्री गुणवती की ओर सङ्केत किया। मन्त्रियों और गुणवती की खुशी की हद न थी। गुणवती खुशी के आँसू बहाने लगी। दौड़कर अपने लड़के और लड़की को गले लगा लिया। उसकी अग्नि-परीक्षा हो गई थी।




हिन्दी
अन्य
सोल एजेन्ट—